वाणी-सरोवर

अक्टूबर, १९७३

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ ३

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ॥

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—४ अक्तूबर, १९७३ अंक—४

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रि. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिळ—डॉ०पी० जयरामन,हिन्दी आफ़िसर रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया
वी. नटराजन, एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.

पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे,एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सि.स.

हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	चिथड़े—(कविता)	हरनन्दन वाजपेयी 'हर्ष'	३
४	ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ८ (क्रमशः)	—पं० बिहारीलाल शास्त्री	४
५	(फ़ारसी)	सिर्रेअक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.	१९३-२००
६	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	२०१-२०८
७	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	२०१-२०८
८	(तमिळ)	तिरुक्कुरळ्—सानु०लिप्य०—श्री डॉ० जयरामन, सुश्री गोमती अय्यर; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	१७७-१८४
९	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	४९-५६
१०	(अ़रबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादे सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	१६१-१६८
११	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	१७७-१८४
१२	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१३७-१४४
१३	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	११३-१२०
१४	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई	१०५-११२
१५	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी.	९७-१०४
१६	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम. ए. सा०र०	९७-१०४
१७	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.	८१-८८
१८	(नेपाली)	भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	८१-८८
१९	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	८९-९६
२०	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	५७-६४
२१	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) श्री जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., साहित्यरत्न	५७-६४

चिथड़े

(जनवरी १९७३ से आगे)

९

कुछ माँगो नहीं कुछ देकर भी, उपकार के नाते यहीं तक हैं।
मत सत्य कहो, न बुरे बनो, न्याय-विचार के नाते यहीं तक हैं।
सब के सब स्वार्थ सधें, प्रिय के - परिवार के नाते यहीं तक हैं।
चिथड़ों प्रतिदान कहाँ जग में, यहाँ प्यार के नाते यहीं तक हैं॥

१०

बिका न्याय तो शक्ति के हाथों हुआ, धिक्! शक्ति-बिहीन का कोई नहीं है।
कहा सत्य ने कुंठा भरे स्वरों में, कि यहाँ पराधीन का कोई नहीं है।
भले नीति हो या हो अनीति, ये रीति है, साधन-हीन का कोई नहीं है।
नहीं जानता राम-रहीम की हूँ, पर विश्व में दीन का कोई नहीं है॥

११

नहीं बात भी पूछता कोई जिन्हें, उन्हें भी बढ़ अंक लगाते हैं ये।
सभी भाँति जो लूटे गये जग में, उन दीनों की लाज बचाते हैं ये।
इन्हीं में छिपे लाल मिला करते, यहाँ काम प्रत्येक के आते हैं ये।
अरी सभ्यों की श्रेष्ठते! देखले तू, फिर भी 'चिथड़े' कहे जाते हैं ये॥

१२

वैभव त्याग चुका इनको, यह वैभव से मुख मोड़ चुके हैं।
क्या प्रभुता-लघुता, चिथड़े इन भेद-विभेदों को छोड़ चुके हैं।
हर्षित हैं सुख में, दुख में, जड़ काया के बंधन तोड़ चुके हैं।
खोज लिये अपने प्रभु की, दुखी-दीनों से जीवन जोड़ चुके हैं॥

१३

नहीं खिन्न ये होते किसी दशा में, किसी से दुखड़ा नहीं रोयेंगे ये।
छिपा मूल में जो सभी कारणों के, उसी की अब याद सँजोयेंगे ये।
इन्हें दोष या श्रेय बुरे-भले का मत दो, यह भार न ढोयेंगे ये।
रहें इंगितों पे जिसके, उसी के पदों में फिर प्रस्तुत होयेंगे ये॥

(क्रमशः)

—हरनन्दन वाजपेयी "हर्ष"

सूक्त ८

ऋषि मधुच्छन्दा, देवता इन्द्र, छन्द-गायत्री

एन्द्र॑ सानसिं र॒यिं स॒त्विा॑नं सदा॒सह॑म् ।
वर्षि॑ष्ठमू॒तये॑ भर । (ऋग् १।८।१)

अर्थ—हे इन्द्र, आर हमे ऐसा धन दीजिए कि जो भली-भाँति सेवन किया जाये, विजय करानेवाला हो, सहने-योग्य हो, श्रेष्ठ हो ।

भावार्थ—उत्तमधन, बल, शक्ति, यश की प्रार्थना है इस मंत्र में ।

नि येन॑ मुष्टिह॒त्यया॒ नि वृ॒त्रा रु॒णधा॑महै ।
त्वोता॑सो॒ न्यर्व॑ता । (ऋग् १।८।२)

अर्थ—हे इन्द्र, आपके द्वारा सुरक्षित हुए हम अपने घोड़ों के बल से घूँसे मार कर शत्रुओं को रोक दें ।

भावार्थ—उक्त अर्थ व्यंजना से सेनापति और राजा पर भी लागू होता है ।

इन्द्र॒ त्वोता॑स॒ आ व॒यं वज्रं॑ घ॒ना द॑दीमहि ।
जये॑म॒ सं यु॒धि स्पृ॑धः । (ऋग् १।८।३)

अर्थ—हे इन्द्र, आपसे सुरक्षित हम वज्र, घन आदि शस्त्र-अस्त्रों को गृहण करें, इकट्ठा करें और स्पर्धा करनेवाले शत्रुओं की जीत लें ।

भावार्थ—वज्र (कड़क के साथ चलनेवाले शस्त्र—तोप, बंदूक, बम आदि) विस्फोटक अस्त्र । घन (खड्ग, भाला आदि) ईश्वर-विश्वास, परन्तु शस्त्रास्त्र भी हो तब जय होती है ।

व॒यं शूरे॑भि॒रस्तृ॑भि॒रिन्द्र॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यम् ।
सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तः । (ऋग् १।८।४)

अर्थ—हे इन्द्र, आपसे युक्त आपकी सहायता से हम शस्त्रार्थधारी शूरवीरों के साथ, शत्रुओं को परास्त करें ।

भावार्थ—सदा विजय की कामना करो ।

(क्रमशः)

अनु०–अन्न ब्रह्म है–ऐसा जाना; क्योंकि निश्चय अन्न से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर अन्न से ही जीवित रहते हैं, प्रयाण करते समय अन्न में ही लीन होते हैं। ऐसा जान कर वह फिर [अपने] पिता वरुण के पास आया [और कहा–] 'भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए।' [वरुण ने] उस से कहा–'ब्रह्म को तप के द्वारा जानने की इच्छा कर, तप ही ब्रह्म है।' उस ने तप किया और उस ने तप कर के–(१)

सि० अ०—जाना कि अन्न ही ब्रह्म है। उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी से जीवित रहते हैं, और उसी में लीन हो जाते हैं। यह जान कर [भृगु ने] मन में सोचा कि अन्न उत्पन्न [वस्तु] है, और कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह कैसे ब्रह्म हो सकती है? [वह] पुनः पिता के पास आया और बोला कि हे भगवन्! मुझे ब्रह्म का बोध कराइए। पिता बोले कि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। तप कर, क्योंकि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। भृगु ने पुनः तप आरम्भ किया। [१]

तृतीयोऽनुवाकः

—प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि जीवन्ति, प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार—'अधीहि भगवो ब्रह्म' इति। तꣳ होवाच—'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्म' इति। स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा–॥ १ ॥

अनु०–प्राण ब्रह्म है–ऐसा जाना; क्योंकि निश्चय प्राण से ही ये प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर प्राण से ही जीवित रहते हैं, और मरणोन्मुख होने पर प्राण में ही लीन हो जाते हैं। ऐसा जान कर वह फिर [अपने] पिता वरुण के पास आया [और बोला–] 'भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए।' उस से [वरुण ने] कहा—'तू तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा कर। तप ही ब्रह्म है।' तब उस ने तप किया और उस ने तप कर के—(१)

सि० अ०—[उस ने] जाना कि यही प्राण ब्रह्म है। उसी से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी से जीवित रहते हैं, उसी में लीन हो जाते हैं। यह जान कर

[उस ने] मन में सोचा कि प्राण उत्पन्न [वस्तु] है, और कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह ब्रह्म कैसे हो सकती है ? [वह] पुनः पिता के पास आया और बोला कि भगवन् ! मुझे ब्रह्म का बोध कराइए। पिता बोले कि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। तप कर, क्योंकि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। भृगु ने पुनः तप आरम्भ किया। [१]

चतुर्थोऽनुवाकः

—मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, मनसा जातानि जीवन्ति, मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार—'अधीहि भगवो ब्रह्म' इति। तꣳ होवाच–'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्म' इति। स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा–॥ १ ॥

अनु०–मन ब्रह्म है–ऐसा जाना; क्योंकि निश्चय मन से ही ये जीव उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर मन के द्वारा ही जीवित रहते हैं, और प्रयाण करते हुए मन में ही लीन हो जाते हैं। ऐसा जान कर वह फिर पिता वरुण के पास गया [और बोला–] 'भगवन् ! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए।' [वरुण ने] उस से कहा–'तू तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा कर, तप ही ब्रह्म है।' तब उस ने तप किया और उस ने तप करके–(१)

सि० अ०—[उस ने] जाना कि यही मन ब्रह्म है। उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी से जीवित रहते हैं, और उसी में लीन हो जाते हैं। यह जान कर [उस ने] मन में सोचा कि मन उत्पन्न [वस्तु] है, और कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह ब्रह्म कैसे हो सकती है ? [वह] पुनः पिता के पास आया और बोला कि हे भगवन् ! मुझे ब्रह्म का बोध कराइए। पिता बोले कि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। तप कर, क्योंकि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। भृगु ने पुनः तप आरम्भ किया। [१]

पञ्चमोऽनुवाकः

—विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार—'अधीहि भगवो ब्रह्म' इति। तꣳ होवाच—तपसा

ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्म' इति। स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा–॥ १ ॥

अनु०–विज्ञान ब्रह्म है–ऐसा जाना; क्योंकि निश्चय विज्ञान से ही ये सब जीव उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर विज्ञान से ही जीवित रहते हैं, और मरणोन्मुख हो कर विज्ञान में ही लीन हो जाते हैं। ऐसा जान कर वह फिर पिता वरुण के समीप आया [और बोला–] 'भगवन् ! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए।' [वरुण ने] उस से कहा–'तू तप के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा कर। तप ही ब्रह्म है।' तब उस ने तप किया और तप कर के[1]–(१)

सि० अ०—[उस ने] जाना कि यही विज्ञान ब्रह्म है। उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी से जीवित रहते हैं, और उसी में लीन हो जाते हैं। [उस ने] यह जान कर मन में सोचा कि विज्ञान उत्पन्न वस्तु है, और कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह ब्रह्म कैसे हो सकती है ? [वह] फिर पिता के पास आया और बोला कि हे भगवन् ! मुझे ब्रह्म का बोध कराइए। पिता बोले कि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। तप कर, क्योंकि ब्रह्म-प्राप्ति का साधन तप है। भृगु ने पुनः तप आरम्भ किया। [१]

षष्ठोऽनुवाकः

—आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद, प्रतितिष्ठति; अन्नवानन्नादो भवति; महान् भवति, प्रजया, पशुभिर्, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

अनु०–आनन्द ब्रह्म है–ऐसा जाना; क्योंकि आनन्द से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं, और प्रयाण करते समय आनन्द में ही समा जाते हैं। वह यह भृगु की [जानी हुई] और वरुण की [उपदेश की हुई] विद्या परमाकाश में

१ अनुवाक २-६ में प्रतिपादित पञ्च-कोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय—का बीज अथर्ववेद १०.२.२७ में अन्न, प्राण, मन, शिर, और देव-कोश के रूप में विद्यमान है। अथर्ववेद १०.२.३१-३२ में 'देव-कोश' को 'हिरण्य-कोश' कहा गया है।

स्थित है। जो ऐसा जानता है वह [ब्रह्म में] स्थित होता है; वह अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है; प्रजा, पशु, और ब्रह्मतेज के कारण महान् होता है, कीर्ति के कारण भी महान्। (१)

सि० अ०—[उस ने] जाना कि केवल आनन्द ही ब्रह्म है। उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी से जीवित रहते हैं, और उसी में लीन हो जाते हैं। यह जान कर और केवल आनन्द में लीन हो कर इस ब्रह्मविद्या को भृगु ने उच्चतर लोकों में प्राप्त किया। जो कोई इस ब्रह्मविद्या को उसी मार्ग से जानता है जिस से भृगु ने तप और इन्द्रिय-निग्रह कर के जाना था, वह केवलानन्द-स्वरूप ब्रह्म हो जाता है और उसे प्रभूत अन्न प्राप्त होता है, वह उत्तम अन्न का भोक्ता होता है, उसे सन्तान और हाथी-घोड़े बहुत होते हैं, उस के मुख से ज्ञान का प्रकाश फूटता है, और महान् कीर्ति वाला होता है। [१]

सप्तमोऽनुवाकः

अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्, शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्, शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद, प्रतितिष्ठति; अन्नवानन्नादो भवति; महान् भवति प्रजया, पशुभिर्, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

अनु०—अन्न की निन्दा न करे। यह व्रत है। प्राण ही अन्न है और शरीर अन्नाद है। प्राण में शरीर स्थित है और शरीर में प्राण स्थित है। इस प्रकार ये अन्न ही अन्न में प्रतिष्ठित हैं। जो इस प्रकार अन्न को अन्न में प्रतिष्ठित जानता है वह प्रतिष्ठित होता है; अन्नवान् और अन्नभोक्ता होता है; प्रजा, पशु, और ब्रह्मतेज के कारण महान् होता है, कीर्ति के कारण भी महान्। (१)

सि० अ०—जो कोई इस कार्य में लगा हुआ है उसे चाहिए कि अन्न की निन्दा कदापि न करे। चूँकि प्राण साक्षात् अन्न है, शरीर अन्न का भोक्ता है, शरीर प्राण से टिका हुआ है, और प्राण शरीर से टिका हुआ है, अतएव दोनों एक दूसरे के अन्न हैं। जो कोई जानता है कि दोनों एक दूसरे से प्रतिष्ठित हैं वह भी प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे प्रभूत अन्न प्राप्त होता है, वह उत्तम अन्न का भोक्ता होता है, उसे सन्तान और हाथी-घोड़े बहुत होते हैं, उसके मुख से ज्ञान का प्रकाश फूटता है, और वह महान् कीर्ति वाला होता है। [१]

अष्टमोऽनुवाकः

अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। आपो वा अन्नम्, ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्, ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठतम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद, प्रतितिष्ठति; अन्नवानन्नादो भवति; महान् भवति प्रजया, पशुभिर्, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

अनु०—अन्न का त्याग न करे। यह व्रत है। जल ही अन्न है, ज्योति अन्नाद है। जल में ज्योति प्रतिष्ठित है, ज्योति में जल प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यह अन्न ही अन्न में प्रतिष्ठित हैं। जो इस प्रकार अन्न को अन्न में प्रतिष्ठित जानता है वह प्रतिष्ठित होता है; अन्नवान् और अन्नाद होता है; प्रजा, पशु, और ब्रह्मतेज के कारण महान् होता है, कीर्ति के कारण भी महान्। (१)

सि० अ०—जो कोई इस कार्य में लगा हुआ है उसे चाहिए कि अन्न को कदापि न फेंके। चूँकि जल साक्षात् अन्न है, अग्नि अन्न का भोक्ता है, और अग्नि जल में रहती है और जल अग्नि में, अतएव ये दोनों एक दूसरे के अन्न हैं। जो कोई जानता है कि दोनों एक दूसरे से प्रतिष्ठित हैं वह भी प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे प्रभूत अन्न प्राप्त होता है, वह उत्तम अन्न का भोक्ता होता है, उसे सन्तान और हाथी-घोड़े बहुत होते हैं, उस के मुख से ज्ञान का प्रकाश फूटता है, और वह महान् कीर्ति वाला होता है। [१]

नवमोऽनुवाकः

अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्, आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः, आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद, प्रतिष्ठिति; अन्नवानन्नादो भवति; महान् भवति, प्रजया, पशुभिर्, ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या ॥ १ ॥

अनु०—अन्न को बढ़ावे। यह व्रत है। पृथिवी ही अन्न है, आकाश अन्नाद है। पृथिवी में आकाश प्रतिष्ठित है और आकाश में पृथिवी प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यह अन्न ही अन्न में प्रतिष्ठित है। जो इस प्रकार अन्न को अन्न में प्रतिष्ठित जानता है वह प्रतिष्ठित होता है; अन्नवान् और

अन्नाद होता है; प्रजा, पशु, और ब्रह्मतेज के कारण महान् होता है, कीर्ति के कारण भी महान् । (१)

सि० अ०—चाहिए कि अपने लिए प्रचुर अन्न प्राप्त करे। पृथिवी अन्न है, भूताकाश अन्न का भोक्ता है, और भूताकाश पृथ्वी के भीतर है और पृथ्वी भूताकाश के भीतर, अतएव ये दोनों एक दूसरे का अन्न हैं। जो कोई जानता है कि दोनों एक दूसरे से प्रतिष्ठित हैं, वह भी प्रतिष्ठित होता है, उसे प्रभूत अन्न प्राप्त होता है, वह उत्तम अन्न का भोक्ता होता है, उसे सन्तान और हाथी-घोड़े बहुत होते हैं, उस के मुख से ज्ञान का प्रकाश फूटता है, और वह महान् कीर्ति वाला हो जाता है। [१]

दशमोऽनुवाकः

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्। तस्माद् यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद् वै मुखतोऽन्नथ्ं राद्धम्, मुखतोऽस्मा अन्नथ्ं राध्यते। एतद् वै मध्यतोऽन्नथ्ं राद्धम्, मध्यतोऽस्मा अन्नथ्ं राध्यते। एतद् वा अन्ततोऽन्नथ्ं राद्धम्, अन्ततोऽस्मा अन्नथ्ं राध्यते ॥ १ ॥

अनु०—अपने यहाँ किसी अभ्यागत का प्रत्याख्यान (निषेध) न करे। यह व्रत है। अतः किसी-न-किसी प्रकार से बहुत सा अन्न प्राप्त करे। क्योंकि वह [अन्नोपासक उस अतिथि] से 'मैंने अन्न तैयार किया है' ऐसा कहता है। जो पुरुष मुखतः सिद्ध किया हुआ अन्न देता है उसे मुखतः ही अन्न की सिद्धि होती है। जो मध्यतः सिद्ध किया हुआ अन्न देता है उसे मध्यम वृत्ति से ही अन्न की सिद्धि होती है। जो अन्ततः सिद्ध किया हुआ अन्न देता है उसे निकृष्ट वृत्ति से ही अन्न की सिद्धि होती है। (१)

सि० अ०—वह निश्चय करता है कि जो कोई उस के घर आयेगा वह उस से कहेगा, 'अन्न उपस्थित है', कि उसे मना नहीं करेगा, कि उस का ध्यान रखेगा, और कि जैसे भी प्रचुर अन्न पहुँचा सकता है पहुँचायेगा। जो कोई जिस रीति से किसी को अन्न पहुँचाता है वह आवश्यकता पड़ने पर उसी रीति से अन्न प्राप्त करता है। यदि उस ने उत्तम रीति से दिया है तो उत्तम रीति से पायेगा और यदि अधम रीति से दान दिया है तो अधम रीति से पायेगा। [१]

य एवं वेद । क्षेम इति वाचि, योगक्षेम इति प्राणापानयोः, कर्मेति हस्तयोः, गतिरिति पादयोः, विमुक्तिरिति पायौ—इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः—तृप्तिरिति वृष्टौ, बलमिति विद्युति, ॥ २ ॥

अनु०—जो इस प्रकार जानता है। वाणी में क्षेम (प्राप्त वस्तु के परिरक्षण) रूप से, योगक्षेम रूप से प्राण और अपान में, कर्मरूप से हाथों में, गतिरूप से चरणों में, त्यागरूप से पायु में—यह मानुषी उपासना है। अब दैवी उपासना कही जाती है—तृप्तिरूप से वृष्टि में, बलरूप से विद्युत् में, (२)

सि० अ०—जो शक्ति वाणी में है, जो शक्ति प्राण और अपान में है, हाथ की पकड़ और पाँव की गति में है, जो शक्ति पायु में है, चाहिए कि उसे भी ब्रह्म जानकर उपासना करे। यह उपासना अध्यात्म है, अर्थात् शरीर में ध्यान। प्राणियों को वर्षा से जो सुख मिलता है, चाहिए कि उसे भी ब्रह्म जान कर उपासना करें। विद्युत् में जो चमक है, चाहिए कि उसे भी ब्रह्म जानकर उपासना करें। [२]

—यश इति पशुषु, ज्योतिरिति नक्षत्रेषु, प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे, सर्वमित्याकाशे । तत् प्रतिष्ठेत्युपासीत, प्रतिष्ठावान् भवति । तन् मह इत्युपासात, महान् भवति । तन् मन इत्युपासीत, मानवान् भवति ॥ ३ ॥

अनु०—यश के रूप में पशुओं में, ज्योति के रूप से नक्षत्रों में, पुत्रादि प्रजा, अमृतत्व, और आनन्दरूप से उपस्थ में, तथा सर्वरूप से आकाश में वह ब्रह्म सब की प्रतिष्ठा (आधार) है—इस भाव से उपासना करे। इस से [उपासक] प्रतिष्ठावान् होता है। वह महः [नामक व्याहृति अथवा तेज] है—इस भाव से उपासना करे। इस से [उपासक] महान् होता है। वह मन है—इस प्रकार उपासना करे। इस से [उपासक] मानवान् (मनन करने में समर्थ) होता है।(३)

सि० अ०—धन-धान्य में जो यश है, नक्षत्रों में जो प्रकाश है, स्त्री के संयोग में जो आनन्द है, भाग्यवान् पुत्र की प्राप्ति में जो आनन्द है—जो पुत्र पिता की मृत्यु के पश्चात् पिता की कामना पूर्ण करता है—,और उस समय जो आनन्द प्राप्त होता है, भूताकाश जो सब की स्थिति का आधार है [उस के द्वारा ब्रह्म की उपासना करे]।

यदि [कोई] ब्रह्म को सब की स्थिति का आधार जानकर उपासना करे तो वह सब की स्थिति का आधार हो जाता है, यदि ब्रह्म को महान् जान कर उपासना करे तो सब में महान् होता है, यदि ब्रह्म को मन जानकर उपासना करे तो ज्ञान-विज्ञान-पूर्वक आत्मा को जानता है। [३]

तन् नम इत्युपासीत, नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद् ब्रह्मेत्युपासीत, ब्रह्मवान् भवति। तद् ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत, पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः, परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश् चायं पुरुषे यश् चासावादित्ये स एकः ॥४॥

अनु०—वह नमः है—इस भाव से उपासना करे। इस से काम्य पदार्थ उस के प्रति विनम्र हो जाते हैं। वह ब्रह्म है—इस प्रकार उपासना करे। इस से वह ब्रह्मनिष्ठ होता है। वह ब्रह्म का परिमर है[1]—इस प्रकार उपासना करे। इस से उस से द्वेष करने वाले उस के प्रतिपक्षी मर जाते हैं, [तथा वे भी] जो अप्रिय भ्रातृव्य (भाई के पुत्र) होते हैं। वह जो इस पुरुष में है और वह जो इस आदित्य में है एक है। (४)

सि० अ०—जो कोई इसी ब्रह्म को नमस्य जानता है उस के प्रति सभी नमन करते हैं और कामनाएँ भी उस के प्रति नमन करती हैं। जो कोई इसी ब्रह्म को स्वामी जानकर नमन करता है वह भी सब का स्वामी हो जाता है। जो कोई इसी ब्रह्म को महावायु (परिमर) जानकर, जिस में विद्युत्, वर्षा, चन्द्र, सूर्य, और अग्नि लीन हो जाते हैं, उपासना करता है उस के समक्ष भाँति-भाँति के शत्रु मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस उपासना को···लोक[1] कहते हैं, अर्थात् इन्द्रियों के देवताओं की उपासना। उस ब्रह्म को जिस के विषय में उल्लेख किया गया है कि सभी वस्तुओं को ब्रह्म जान कर उपासना करे—उस ब्रह्म को और सूर्य में जो प्रकाश है तथा हृदय में जो प्रकाश है उसे एक जाने। [४]

स य एवंवित्, अस्माल् लोकात् प्रेत्य, एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य, एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य, एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य, एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य, एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य इमाँल् लोकान् कामान्नी, कामरूप्यनुसञ्चरन्, एतत् साम गायन्नास्ते—हा ३ वु, हा ३ वु, हा ३ वु ॥ ५ ॥

---

१ तुलनीय ऐतरेयब्राह्मण ८.२८; कौषीतक्युपनिषद् २.१२।

परशुरामन् नशिप्पिच्च क्षत्रियवंशं वीण्टुं
अभिवृद्धियै प्रपिच्चतु ।

अन्नेरं मुनिवरनाय वैशम्पायनन्
वन्दिच्चु नारायणन्तन्नुटे पादांबुजं १
चोल्लुवनेङ्किल् केट्टुकोळ्ळुक नराधिप
चोल्लेरुं जमदग्निनन्दननाय रामन् २
मूवेळुवट्टं मुटिमन्नरेयोटुक्किप्पोय्
पर्व्वतोत्तमनाय् मेवीटुन्न महेन्द्रत्तिन्- ३
मुकळिल् तपस्सुचेय्तिरिक्कुं कालत्तिङ्कल्
अकतारुळन्नोरु राजनारिकळेल्लां ४
सन्ततियिल्लाञ्जुळ्ळ सन्तापमकलुवान्
सन्तुष्टन्माराय् मेवुमन्तणरोटु चोन्नार् । ५
वेन्तु वेन्तुरुकुन्नु चिन्तिच्चु कुलनाशं
सन्तानमुण्टाक्कणं ञङ्ङळिल् निङ्ङळिनि- ६
यन्तिके वन्नु चोन्न सुन्दरांगिकळुटे
पन्तोक्कुं कुळुरमुल पुल्किनारवर्कळुम् । ७
ऋतुकालं पार्त्तु गर्भाधानं चेय्तकाल-
मतुलगुणमुळ्ळ पुत्रन्मारुण्टाय्वन्नु । ८

परशुराम द्वारा नष्ट किये गये क्षत्रियवंश का फिर अभिवृद्धि प्राप्त करना

उस समय मुनिवर वैशम्पायन ने नारायण के पादांबुजों (चरण-कमलों) की वन्दना करके कहा—'मैं बतला दूँगा। हे नराधिप! आप सुन लीजिए। विख्यात जमदग्नि के पुत्र परशुराम इक्कीस बार राज करनेवाले राजाओं को समाप्त करके पर्वतोत्तम महेन्द्र पर जाकर जब तपस्या कर रहे थे तब दुःखित राजपत्नियों ने सन्तान न होने का सन्ताप दूर करने के लिए सुख से रहनेवाले ब्राह्मणों से कहा। कुलनाश को सोंचते सोंचते हम लोगों का हृदय संताप से पिघल रहा है। इसलिए आप लोग हममें सन्तान पैदा कीजिए। ब्राह्मणों ने इस प्रकार समीप में आयी हुई सुन्दरियों के कन्दुक समान शीतल स्तनों का आलिंगन किया। जब ऋतुकाल को देखकर गर्भाधान किया गया तब अतुल गुणवाले पुत्रों का जन्म हुआ। ८ उन ब्राह्मणों ने यह काम धर्म के लिए किया,

कामानुभूति चिन्तिच्चल्लतुं कुलंतन्ने
कामिच्चु चेय्कयत्रे धर्म्मार्त्थमवरेल्लाम् । ९
क्षत्रियवीरन्मारुं वर्द्धिच्चारतुकालं
पृथ्वियुं परिपालिच्चीटिनार् वळिपोले । १०
चेन्नीटुं वयस्सु नूऱायिरं संवत्सरं
चेन्नीटा मनस्सधर्म्मङ्ङळिलौरुवनुम् । ११
कामक्रोधादिकळां दोषङ्ङळौन्नुमिल्ल
कामिच्चवण्णंतन्ने वन्नीटुमेल्लावनुं १२
पिळयिकलतिनु तक्कौरु शिक्षयुमुण्टु
पिळयकयिल्ला तम्मिलन्योन्यमौरुवनुं । १३
मळयुं वेणमेन्नु तोन्नुम्पोळुण्टांय्वरुं
वळियेन्निये नटन्नीटुमाऱारुमिल्ल । १४
परनारिकळिलुं परद्रव्यङ्ङळिलु-
मौरुनेरवुमभिरुचियिल्लौरुवनुम् । १५
वेदवुं वळिपोले पठिक्कुं द्विजेन्द्रन्मा-
रादरवोटु कर्म्मं चेय्तीटुं नृपन्मारुम् । १६
पशुपालनं कृषि वाणिभमिवयेल्ला-
मशुभमणयाते चेय्तीटुं वैश्यन्मारुम् । १७
शूद्ररुं द्विजन्मारे शुशूषिच्चीटुं भक्त्या
शूद्रजातिकळ् केळक्के स्वाध्यायादियुमिल्ल । १८

कामभोग के उद्देश्य से नहीं। क्षत्रियवीर सब अच्छी तरह से बढ़े और उन्होंने ढंग से (न्याय पूर्वक) पृथिवी का परिपालन किया। उस समय मनुष्यों की एक एक लाख बरस की आयु होती थी। किसी का भी मन अधर्म में नहीं लगता था। काम, क्रोध आदि दोष कहीं नहीं थे। जो कुछ लोग चाहते थे वही होता था। अपराध के अनुरूप दण्ड प्राप्त होता था और लोग आपस में कभी न झगड़ते थे। जब बरसात की आवश्यकता प्रतीत होती थी तभी वह होती थी। अपना कर्तव्य-मार्ग छोड़कर चलने वाला कोई भी न था। परनारी और परद्रव्य में किसी की भी अभिरुचि न थी। ब्राह्मण यथाविधि वेद पढ़ते थे और राजा लोग सादर (प्रजापालन) कर्म करते थे। और वैश्य लोग पशुपालन, कृषि और वाणिज्य बिना कूट (छल) के करते थे। शूद्र भक्ति के साथ द्विजों की शुश्रूषा करते थे और शूद्रों के सुनते स्वाध्याय नहीं होता

रौद्रकर्म्मङ्ङळ् चेय्कयिल्लतिदीनन्मारि-
लार्द्रभाववुमुण्टु सत्यवुमुण्टेल्लावर्क्कुम् । १९
कळ्ळक्कोल् कळ्ळप्पेरुनाळियुं कळ्ळनाळि
कळ्ळच्चोतनयिवयिल्ल चन्तकळिलुम् । २०
कळ्ळमॆन्नुळ्ळतुळ्ळिलॆळ्ळोळमिल्ल चॊल्वान्
कळ्ळवाक्किल्ला कळ्ळन्मारिल्ल काट्टिल्प्पोलुम् । २१
स्वधर्म्मानुष्ठानत्तिल् निष्ठयुमुण्टेल्लावर्क्कु-
मधर्म्मङ्ङळुमिल्ल विधर्म्मङ्ङळुमिल्ल । २२
मट्टुळ्ळ वर्णकर्म्मं मट्टुळ्ळ जातिक्किल्ल
मुट्टुं तङ्ङळ्क्कुतङ्ङल्क्कुळ्ळ कर्म्ममेयुळ्ळु । २३
गोक्कळुं नारिकळुं कालत्तु पॆरुमल्लो
पूक्कयुं काय्कयुं चेय्तीटुमे मरङ्ङळुम् । २४
उत्पत्ति वेण्टुवोळं विळयुं वळिपोलॆ
कल्पनयिकळक्कमिल्लीश्वरभक्तियुण्टु । २५
सत्पुरुषन्मारॆन्नियिल्लॊरु वंशत्तिलु-
मुत्पलाक्षिकळुमिल्लाकातॆयॊरुवरुम् । २६
कुत्सितङ्ङळुमिल्ल कुत्सनवाक्कुमिल्ल
भर्त्सनमॊट्टुमिल्ल मत्सरादियुमिल्ल । २७

था । १८ रौद्रकर्म कोई नहीं करता था और अतिदीन के प्रति आर्द्रभाव होता था, सभी सत्यवादी थे । जाली डंडा (एक प्रकार का नाप) जाली बड़ी नाड़ी, जाली नाड़ी, जाली सेर, यह सब बाज़ार में नहीं चलता था । लोगों के भीतर कहने के लिए झूठ तिलभर भी नहीं था, झूठी बातें न होती थीं और चोर जङ्गलों में भी न थे । स्वधर्म के अनुष्ठान में सभी की निष्ठा थी, न कहीं अधर्म था और न विधर्म । एक वर्ण का कर्म दूसरा वर्ण न करता था, सब अपने-अपने ही कर्म किया करते थे । गायें और स्त्रियाँ ठीक समय पर सन्तान उत्पन्न करती थीं । और पेड़ भी इसी प्रकार फूल और फल देते थे । यथेष्ट उत्पादन यथासमय होता था, शासन टाला नहीं जाता था और ईश्वर के प्रति सबकी भक्ति थी । २५ किसी भी वंश में सत्पुरुषों के अतिरिक्त कोई नहीं था और उत्पलाक्षियों (कमल के समान नेत्र वाली स्त्रियों) में भी बिगड़ी हुई कोई न थी । कोई कुत्सित (निन्दित) नहीं था और किसी के भी मुख से निन्दा की वाक् (वाणी) नहीं सुनी जाती थी । कोई

इङ्ङनॆ कृतयुगमायुळ्ळ कालत्तिङ्कल्
तङ्ङळिल् सुरासुरर् वैरमाय् चमञ्ञितु । २८
देवकळोटु पोरिल् मरिच्चारसुरकळ्
देवत्वं कॊतिच्चवर् पिऱन्नारवनियिल् । २९
नानायोनिकळिल् वन्नुद्भविच्चसुरन्मार्
मानसखेदं पूण्टु मेदिनि भारं कॊण्टु । ३०
निष्ठुरन्मारायुळ्ळ दैत्यभूपतिवीरर्
दुष्टतयॊऴिञ्ञु चॆय्तीटुकयिल्लयॊन्नुम् ३१
नष्टमाय् च्चमञ्ञितु धर्म्मवुमतुकालं
पॆट्टपाटोरोजनमॆन्तय्यो पऱवतुम् । ३२
प्रकृतिगुणवशालुळ्ळ वासनकळॆ-
स्सुकृतमुळ्ळवर्क्कुं नीक्कुवान् वेलयत्रे । ३३
लोकपालरुं मुनिमारुमायवनियुं
लोककर्त्तावायुळ्ळ धातावुतन्नॆक्कण्टाळ् । ३४
वेदनयॆल्लां पशुरूपमाय् चॆन्नु चॊन्नाळ्
वेदनायकनाय धातावुमतुकालं ३५
देवकळोटुं मुनिश्रेष्ठन्मारोटुं कूटि-
द्देवदेवेशनीशनीश्वरन् शंभु वाम-
देवनंबिकापति शङ्करन् महेश्वरन् ३६
श्रीकण्ठन् शितिकण्ठन् त्रीक्षणन् त्रिपुरारि
वैकुण्ठनमस्कृतनीशानन् पशुपति ३७

किसी को नहीं डाँटता था और मत्सर कहीं न था। इस कृतयुग के समान समय में देव और असुरों में वैर पैदा हो गया। युद्ध में देवों के हाथ असुर मारे गये और देवत्व प्राप्त करने की लालसा से उन्होंने पृथिवी पर जन्म लिया। असुर लोग भिन्न भिन्न योनियों में पैदा हुए और उनके भार से मेदिनी (पृथ्वी) दुःखित हुई। क्रूर दैत्य भूपतिवीर दुष्टता से मुक्त (रहित) कोई भी काम नहीं करते थे। धर्म तो उस समय बिलकुल ही नष्ट हो गया और लोगों ने जो कष्ट सहा वह कहाँ तक कहा जाय? ३२ प्रकृति के गुणों के कारण जो प्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं उनको दूर करना पुण्यजनों के लिए भी कठिन है। लोकपाल, महामुनि और स्वयं पृथिवी देवी ने लोक के कर्ता ब्रह्मा का दर्शन किया। गाय के रूप में जाकर पृथ्वी ने अपना सारा दुःख सुनाया। उस समय

त्र्यंबकन् चन्द्रचूडन् शंबरारातिवैरि
गंगावल्लभन् गौरीवल्लभन् कालाराति ३८
मत्तहस्तीन्द्रासुरमर्द्दनन् भूताधिप-
नस्थिभूषणन् कृत्तिवसनन् मृत्युञ्जयन् ३९
अद्रिमन्दिरन् अद्रिचापनद्रिजाकान्तन्
रुद्रन् वाणरुळीटुं कैलासाचलं पुक्कान् । ४०
दानवप्रवरन्मार् मानवप्रवरराय्
क्षोणियिल् वन्नु पिऱन्नीटिनारितुकालम् । ४१
सम्मतं मऱञ्ञितु दुर्म्मतं निऱञ्ञितु
धर्म्मवुं कुऱञ्ञितु निर्म्मर्यादयुं वाच्चु । ४२
भूमियुं भारंकॊण्टु तळर्न्नुं चमञ्ञितु
सोमशेखर पोट्टी ! कात्तुकॊळ्कॆन्नेवेण्टु । ४३
स्तुतिच्चु वन्दिच्चॊरु पद्मजादिकळोटाय्
क्रतुध्वंसियुं तॆळिञ्ञरुळिच्चॆय्तीटिनान् । ४४
वधत्तिन्नसुरभूपालरॆयॆल्लामिन्नु
मधुद्वेषियॆक्कल्पिच्चिरिक्कुन्नितु मुन्ने । ४५
दुष्टरॆ वधं चॆय्तु शिष्टरॆ विधिपोलॆ
विष्टपत्तिङ्कल् वच्चु रक्षिप्पान् वेलचॆय्याम् । ४६
सङ्कटं दुग्धांबुधि पुक्कुटनुर्णत्तिप्पान्
पङ्कजभवादिकळ् नटप्पिन् मुन्निपलिप्पोळ् । ४७

वेदों के नायक ब्रह्मा देवों और मुनिवरों के साथ देवदेवेश, ईश, ईश्वर, शंभु-वामदेव, अंबिकापति, शङ्कर, महेश्वर श्रीकण्ठ, शितिकण्ठ, त्रीक्षण, (तीन नेत्र वाले) त्रिपुरारि, वैकुण्ठनमस्कृत, ईशान, पशुपति, त्र्यंबक, चन्द्रचूड, शंबरशत्रु के वैरि गंगावल्लभ, गौरीवल्लभ, काल के शत्रु मत्त हाथी के रूपवाले असुर का मर्दन करने वाले, भूताधिप, अस्थिभूषण, कृत्तिवास, मृत्युंजय, अद्रिमन्दिर, अद्रिचाप, पार्वतीकान्त, रुद्र के निवास स्थान कैलास पर्वत पर गये और कहने लगे—४० दानवों के प्रमुखों ने मानवप्रमुख के रूप में पृथिवी में आकर जन्म लिया है। सद्भावना नष्ट हो गयी, दुर्भावना फैल गयी, धर्म कम हो गया और निर्मर्यादा बढ़ गयी। पृथिवी भी भार से दुखी हो गयी है। हे सोमेश्वर, हे दीन-दयालु ! रक्षा करो, इतना ही कहना है। जिन ब्रह्मादिकों ने इस प्रकार स्तुति और वन्दना की उन पर प्रसन्न होकर क्रतुध्वंसी (दक्ष के यज्ञ का

मटियिल् मरुवीटुं मलमातिन् पोर्मुल-
त्तटवुं तटवि नां पोकॅटो दुग्धांबुधौ । ४८
इवर्कळोटुमिप्पोळ् नां कूटॅप्पोकाय्किलो
विवशभावं तीरा लोकङ्ङळ्क्कात्मनाथे ! ४९
अॅन्नरुळ्चॅय्तु भुवनेश्वरियोटुकूटि-
प्पन्नगविभूषणन् भूतसंचयत्तोटुं ५०
अंभोजसंभवनुमुन्परुं मुनिमारुं
तुंबुरुनारदनुमंबरचारिकळुं ५१
चॅन्नु पालाळिकण्टु पुकळ्न्नुतुटङ्ङिनार्
पन्नगशयननां परमात्मानं परम् । ५२
पुरुषोत्तम ! हरे ! पुण्डरीकाक्ष ! पर-
पुरुष ! पुरातन ! पूर्व्वदेवारे ! जय ! ५३
चरणसरसिजयुगळनतजन-
दुरितविनाशन ! करुणानिधे ! जय ! ५४
वेदज्ञप्रिय ! जय वेदार्त्थात्मक ! जय !
वेदान्तवेद्य ! जय ! वेदविग्रह ! जय ! ५५

विध्वंस करने वाले शिव जी) ने कहा असुरभूपालों के बध के लिए पहले ही मधुद्वेषी (विष्णु) से कहा गया है। दुष्टों का निग्रह करके शिष्टों की इस लोक में यथाविधि रक्षा करने में मैं सहायक हूँगा। ४६ अब क्षीरसागर पहुँचकर सारा दुःख विष्णु को बतलाने के लिए आप (ब्रह्मा आदि) रवाना हो जाइए। तदनन्तर पन्नगविभूषण (सर्पों के भूषण वाले शिव जी) ने गोद में बैठी हुई पार्वती जी के स्तनतटों को आलिङ्गन कर कहा—"अब हम क्षीरसागर चलें। हे आत्मनाभे ! अगर हम इन के साथ न चलेंगे तो लोकों की विवशता न दूर होगी"। इतना कहकर भुवनेश्वरी के साथ, भूतगणों के साथ, तथा ब्रह्मा, देवगण और मुनिगण, तुंबुरु, नारद और गगनचारियों के साथ क्षीरसागर गये और अनन्तशयन परमात्मा की इस प्रकार स्तुति करने लगे—५२ हे पुरुषोत्तम, हे हरि ! पुण्डरीकाक्ष ! परपुरुष ! पुरातन ! असुरों के शत्रु ! तुम्हारी जय हो ! हे अपने पादपद्मों पर नत लोगों के पाप को नष्ट करने वाले ! हे करुणा-निधि! जय हो ! हे वेदज्ञों के प्रिय ! वेदार्थात्मक ! जय हो! हे वेदान्तवेद्य! हे वेदविग्रह ! जय हो ! हे प्रकृति और पुरुष से भिन्नात्मक ! जय हो ! हे पुण्यजनों के मन में रहने वाले! जयजय! हे सृष्टि, पालन और संहार-कर्त्ता!

प्रकृतिपुरुषभिन्नात्मक ! जय जय !
सुकृतिजनमनोमन्दिर ! जय जय ! ५६
सृष्टिपालनलयकारणमूर्त्ते जय !
दुष्टनाशन जय शिष्टपालन जय ! ५७
हयग्रीवनॆक्कॊन्नु वेदङ्ङळ् वीण्टु मुन्नं
भयत्तॆत्तीर्प्पान् मत्स्यवेष माधव जय ! ५८
क्षीरसागरमथनान्तरे मुन्नमति-
भारमाय्काणीटुन्न मन्दरमुयर्त्तुवान् ५९
घोरमायोरु कूर्म्मविग्रहं धरिच्चीटुं
कारणमूर्त्ते जय कमलापते जय ! ६०
धात्रियॆत्तिरिच्चु तन् कातिलिट्टधोलोक-
प्राप्तिक्कु भाविच्चोरु हिरण्याक्षनॆ मुन्नं ६१
पोत्रियायवतारं चॆय्तु निग्रहिच्चु तन्
धात्रियॆ स्थानत्ताक्कुं यज्ञांगमूर्त्ते जय ! ६२
हिरण्यकशिपुवामसुरेन्द्रनॆक्कॊल्वान्
नरसिंहाकारमाय्च्चमञ्ञ नाथ ! जय । ६३
दितिजाधिपनाय बलियॆ जयिप्पति-
नदितीसुतनाय वामनमूर्त्ते ! जय । ६४
धरणीसुरजनद्वेषिकळायुण्टाय
धरित्रीपालन्मारॆ जमदग्निजनाये ६५

जय हो ! हे दुष्टनाशन ! हे शिष्टपालन ! तुम्हारी जय हो ! हयग्रीव का वध करके पूर्वकाल में तुमने वेदों का उद्धार किया। भय दूर करने के लिए जिसने मत्स्य का रूप धारण किया उस माधव की जय ! पूर्वकाल में समुद्रमन्थन के अवसर पर भारी मन्दरपर्वत को उठाने के लिए हे कारणमूर्ते ! कमलापते ! तुमने एक घोर कूर्म का रूप धारण किया था। तुम्हारी जय हो। ६० पृथिवी को लपेटकर अपने कान में दबाकर पाताल ले जानेवाले हिरण्याक्ष का पूर्वकाल में वराह रूप में अवतार लेकर निग्रह करने वाले और भूमि को अपने स्थान में स्थापित करने वाले यज्ञांगमूर्ति तुम्हारी जय हो ! हे नाथ ! असुर हिरण्यकशिपु के वध के लिए तुमने नरसिंह का आकार ग्रहण किया था। तुम्हारी जय हो ! तुम्हारी जय हो जिसने असुरों के नाथ बलि को जीतने के लिए अदितिसुत वामन की मूर्ति ग्रहण कर ली। हे परशुराममूर्त्ते ! रक्षा करो,

इरुपत्तॊन्नुवट्टं वधिच्चु तापं तीर्त्त
परशुराममूर्त्ते परिपालय जय । ६६
पंक्तिकण्ठनॆक्कॊन्नु मुन्नमापत्तु तीर्प्पान्
पंक्तिस्यन्दनसुतनाय राघव जय ! ६७
अन्नन्नीवण्णमुण्टामापत्तु तीर्त्तु रक्षि-
क्कुन्नतु मट़ारखिलेश्वर जय जय । ६८
इर्प्पॊळुमतिल्परमापत्तु मुळुत्तितु
चिल्पुमानाय जगतीपते ! रमापते ! । ६९
निष्ठुरन्मारामसुरेन्द्रन्मारवनियिल्
दुष्टभूपालन्माराय् पिरन्नु मुळुक्कयाल् ७०
नष्टमायितु धर्म्मकर्म्मङ्ङळॆल्लामळल्-
प्पॆट्टुटन् भारंकॊण्टु ताणुपोमवनियुम् । ७१
निन् तिरुवुळ्ळमिल्लॆन्नाकिलिञ्ञङ्ङळ्क्कॆल्ला-
मॆन्तॊरु गति परमानन्दमूर्त्ते विष्णो ! । ७२
सन्ततं तव पादपङ्कजमकतारिल्
चिन्तिक्काय्वरेणमे भगवन् जय जय ! ७३
पुरनाशनन् तानुं पुरुहूतादिकळुं
पुरुभक्तियुं पूण्टु पुकळ्न्नार् पलतरं । ७४

तुम्हारी जय हो जिसने जमदग्नि का पुत्र बनकर ब्राह्मणद्वेषी भूपालों को इक्कीस बार नष्ट कर दिया और जनता का दुःख समाप्त कर दिया। जिसने पुरा (प्राचीन काल में) दशरथ का पुत्र बनकर दशकण्ठ का वध किया और विपत्ति को हटाया उस राघव की जय हो ! ६७ हे अखिलेश्वर ! पैदा होने वाली विपत्तियों को तत्काल ही दूर करनेवाला तुम्हें छोड़कर और कौन है ? तुम्हारी जय हो ! हे जगतीपते ! रमापते ! अब फिर उससे बढ़कर विपत्ति पैदा हो गयी है। पृथिवी में दुष्ट भूपाल के रूप में क्रूर असुरों के जन्म लेने के कारण, अब धर्म कर्म सब नष्ट हो गया और दुःखित भूमि अब भार से नीची हो जायगी। हे परमानन्द-मूर्त्ते ! हे विष्णो ! अगर तुम्हारा प्रसाद (कृपा) न होगा तो अब हम लोगों की क्या गति होगी ? हे भगवन् ! ऐसा हो कि हम लोग सतत (निरन्तर) तुम्हारे पादपङ्कज का ध्यान करते रहें। जय जय ! शिवजी और इन्द्र आदि देवगणों ने बड़ी भक्ति के साथ विभिन्न प्रकार से स्तुति की। ब्रह्मा ने पुरुषसूक्त के द्वारा पुरुषोत्तम का अच्छी तरह से ध्यान किया। ७५

वानरगण-कर्त्तृक द्वितीयवार लंका-दाह

श्रीराम बलेन, शुन मन्त्री जाम्बवान ❊ चिन्तिया मन्त्रणा कर, ये हय विधान
जाम्बवान बले, प्रभु पाठाये वानरे ❊ लङ्काय आगुन देह प्रति-घरे-घरे२३१
एतेक शुनिया तबे सुग्रीव-राजन ❊ बड़-बड़ वानरे पाठाय ततक्षण
सुग्रीवेर आज्ञा पेये असंख्य-वानर ❊ लाफे-लाफे पड़े गिया लङ्कार भितर
एके लङ्कापुरी, ताहे वानरेर जाति ❊ आँचड़-कामड़ मारे धरिया युवती
अन्तःपुर-नारी देखि वानरेर रंग ❊ कापड़ काड़िया लय करिया उलंग
अञ्चल धरिया दन्त खिंचाइया उठे ❊ वस्त्र फेलि युवती पलाय सबे छुटे
दन्त किच्‌किच् करे, खिलखिल हासि ❊ भाण्डार हइते आने घृतेर कलसी
कारे मारे लाथि-कील, कारे मारे चड़❊ नारायण-तैलेर कलसी ल'ये रड़
बाहिर आओयासे दिते गेल समाचार❊ तिनलाफे प्राचीर हइया आसे पार
नारायण-तैल घृत कलसी कलसी ❊पर्व्वत-प्रमाण वस्त्र आने राशि-राशि२३२
एइरूपे दुर्ज्जय वानर कोटि-कोटि ❊ सन्ध्याकाले लक्ष-लक्ष ज्वलिल देउटि
एके चाय, ताहे आज्ञा पाइल वानर ❊ लाफे-लाफे प्रवेशिल लङ्कार भितर

वानरों द्वारा दूसरी बार लंका-दहन

श्रीराम ने कहा, हे मंत्री जाम्बवान, सोच विचार कर कोई रास्ता निकालो कि क्या किया जाये। जाम्बवान ने कहा, प्रभु, वानर भेजकर लंका के प्रत्येक गृह में आग लगवा दो ॥ २३१ ॥

इतना सुनकर राजा सुग्रीव ने बड़े-बड़े वानरों को भेज दिया। सुग्रीव की आज्ञा पाकर असंख्य वानर लंका के भीतर कूद पड़े। एक तो लंकापुरी, फिर बन्दरों की जाति—युवतियों को पकड़-पकड़ कर उन पर नख-दन्त का प्रहार करने लगे। अन्तःपुर की नारियाँ बन्दरों का राग-रंग देखने लगीं। कोई बन्दर उनका वस्त्र खींचकर उनको नग्न कर देता तो कोई आँचल पकड़ कर दाँत दिखाने लगता। तब कपड़े फेंक-फाँक कर युवतियाँ सब भाग खड़ी हुईं। तब वे वानर दाँत किटकिटाकर और खिलखिलाकर हँसने लगे और भंडार से घी के मटके उठा लाए। किसी को वे लात-घूँसा मारते तो किसी को झापड़। वे नारायण-तैल का घड़ा लेकर दौड़ने लगे। बाहरी-आवास में कोई समाचार देने दौड़ी तो वे तीन छलाँग में प्राचीर लाँघ गये। नारायण-तैल और घी के मटके इकट्ठे हुए और पर्वत-प्रमाण वस्त्रों का ढेर जमा हो गया ॥ २३२ ॥

इस प्रकार करोड़ों अजेय वानरों ने सन्ध्या के समय लाख-लाख दीपक जला दिये। एक तो उनकी मनचाही बात थी, तिसपर उनको आज्ञा मिली हुई थी—कूद-कूद कर वे सभी लंका में प्रवेश कर गये। एक-एक कपि ने

एक-एक कपि लय दु-दुटि मशाल * अग्नि दिया पोड़ाय लङ्कार प्रतिचाल
अग्निते पुड़िया पड़े बड़-बड़ घर * परित्राहि रव उठे लङ्कार भितर
उलङ्ग हइया केह पलाइल डरे * लाफ दिया पड़े केह जलेर भितरे
अनेक पुड़िल घर आगुनेते ज्वले * केह वा पलाये जाय बाप बाप ब'ले
लङ्कार भितर यत छिल विद्याधरी * जलेते प्रवेश करे, बले मरि मरि
अंग डुबाइया मुख भासाइला जले * सरोवर शोभे येन शत-शतदले
दुयारे थाकिया देखे हनू महाबल * देउटिर अग्नि दिया पोड़ाय कुशल
जलेते डुबाये अंग जागाइछे मुख * मुखे अग्नि दिया हनू देखिछे कौतुक
डुबिया थाकिल त्रासे जलेर भितरे * जल खेये तारा सब पेट फुले मरे
त्रिशकोटि रमणीर पोड़ाय वदन * लाफ दिया उठे चाले पवन-नन्दन
आगे-पाछे अग्नि देय, करे ताड़ाताड़ि * बालक-युवक पुड़े, कत बुड़ा-बुड़ी
सैन्य-सामन्तेर घर पोड़े सारि-सारि * पात्रमित्र गणेर पुड़िल कत पुरी
मणिरत्न-निर्म्मित सुन्दर सब घर * लेखाजोखा नाहि तार, पुड़िल विस्तर
खाट पाट पालङ्क पुड़िल रत्न-धन * मणि-रत्न निर्म्मित असंख्य आभरण
बहुदूर हइते अग्निर शब्द शुनि * वानर-कटक घरे दितेछे आगुनि
पर्व्वत-प्रमाण अग्नि भयंकर देखि * पिञ्जर-सहित पोड़े यत पोषा-पाखी

दो-दो मशाल लिये और इस प्रकार वे आग से लंका के प्रत्येक छाजन को जलाने लगे। आग में जल कर बड़े-बड़े मकान गिरने लगे और लंका में त्राहि-त्राहि का रव सुनाई पड़ने लगा। कोई तो विवस्त्र होकर भाग खड़ा हुआ तो कोई जल में कूद पड़ा। बहुत सारे मकान के भीतर ही आग में जलकर मर गये तो कोई बाप-बाप कहते हुए भागा। लंका में जितनी विद्याधरियाँ थीं वे पानी में प्रवेश कर कहने लगीं, हाय मरीं। सरोवर में शरीर डुबो कर जल के ऊपर मुँह किये वे खड़ी रहीं और यों लगा कि सरोवर सैकड़ों शतदलों (कमलों) से सुशोभित है। महाबली हनुमान ने द्वार पर खड़े होकर यह देखा तो दीपक की अग्नि से उनके केश जलाने लगा। पानी में डूब कर मुँह ऊपर किये हुए हैं, यह देखकर उनके मुख को आग से जला कर वह कौतुक देखने लगा। जब भय से वे जल में डुबकी लगा गईं तो उनके पेट पानी से भर गये। तीस करोड़ औरतों का मुँह जलाकर पवन-नन्दन कूद कर छत पर चढ़े। फुर्ती से वे आगे-पीछे सभी जगह आग लगाने लगे जिससे कितने ही बालक-युवक और बुढ़िया-बूढ़े जल कर मर गये। सैनिकों, सेनापतियों और पात्र-मित्रों के घर जलकर खाक हो गये। मणि-रत्नों से बने कितने ही सुन्दर घर जिनकी कोई गिनती नहीं जलकर भस्म हो गये। खाट-पलंग, धन-रत्न, मणि-माणिक्य से बने आभरण सभी जल गये। बहुत दूर से आग का शब्द सुनाई पड़ता। वानर-कटक में घर-घर आग लगाने

शारी शुक काकातुया सारस सारसी* नानाजाति विहंग पुड़िल राशि-राशि
हाती घोड़ा गेल पोड़ा कत लाखे-लाख* पलाते ना पारे, डाके विपरीत डाक
कतशत मयूर पुडिल झाँके-झाँक * कुक्कुट-आकृति हैल, पोड़ा गेल पाख
नाना जानि पोषा-जन्तु पालेपाले पोड़े* प्राणभये केह वा पलाय उभरड़े
वानरेते पर्व्वत बरिषे झाँके-झाँके * श्रवण बधिर हैल आगुनेर डाके ३३
अगंद बलेन, शुन पवन-कुमार * चारिजन राखह लङ्कार चारिद्वार
ब'से थाक चारिद्वारे देउटि ज्वलिया * राक्षस आइले देह मुख पोड़ाइया
भितरेते आगुन बाहिरे जेते चाय * पलाइते नारे, मुख वानरे पोड़ाय
राक्षस-अवस्था देखि वानरेर हास * लङ्काकाण्ड गाहिल पण्डित कृत्तिवास ३४

कुम्भ ओ निकुम्भेर युद्ध ओ पतन

रावण बले, नाहि सहे प्राणे अपमान * थाकिले कपाट दिया नाहिक एड़ान
कपाट दिले पोड़ाय घर, युद्ध हैल सार* युद्ध-बिना निस्तार नाहिक देखि आर
कुम्भ ओ निकुम्भ कुम्भकर्णेर नन्दन* डाक दिया आनाइल राजा दशानन
दुइभाइ आसिया राजाकेनोङायमाथा* रावण बले, देख बापू, लङ्कार वितथा

लगा। पर्वत की तरह वह भयंकर आग की लौ ऊपर उठी। कितने ही पालतू पक्षी पिंजड़ों में जलकर मर गये। तोता, मैना, काकातुआ, सारस आदि विभिन्न जाति के असंख्य विहंग भी जल मरे। लाखों हाथी-घोड़े जल कर मर गये। भाग न सकने के कारण वे चीख-चिंघार मचाने लगे। कितने ही मोर जल गये—पंख जल जाने से वे कुक्कुट (मुर्गे) जैसे नजर आने लगे। विभिन्न जाति के पालतू पशु झुण्ड के झुण्ड जलने लगे। कितने ही प्राणों के भय से बेतहाशा भागने लगे। वानर पत्थर बरसाने लगे। इस प्रकार आग के कोलाहल से सबके कान बहरे होने लगे ॥ ३३ ॥

तब अंगद ने कहा, हे पवनकुमार हनुमान, लंका के चारों द्वारों पर चार व्यक्तियों को नियुक्त करो। चारों दरवाजों पर मशाल जलाकर बैठे रहो और राक्षसों के निकलते ही उनका मुख जला दो। भीतर की आग से घबड़ा कर राक्षस बाहर निकलना चाहते थे किन्तु भाग नहीं पाते थे, उनका मुख वानर जला देते थे। राक्षसों की दशा देखकर वानर हँसने लगे। लंकाकांड में पंडित कृत्तिवास ने यह गीत गाया ॥ ३४ ॥

कुम्भ और निकुम्भ का युद्ध और पतन

रावण ने कहा अब तो यह अपमान सहन नहीं होता। किवाड़ बन्द करके रहने से भी छुटकारा नहीं। किवाड़ बन्द करने पर ये घर में आग लगाने लगते हैं। अब तो युद्ध करना ही पड़ेगा। युद्ध के बिना अब कोई निस्तार नहीं। कुम्भकर्ण के दो पुत्र थे कुम्भ और निकुम्भ। उनको राजा

विक्रमेते अतुल तोमारा दु'टि भाइ * त्रिभुवन पराभूत तोमा-दोंहा-ठाँइ
आमि जयी तोमार पितार बाहुबले * कुम्भकर्ण-शोके आमि भासि अश्रुजले
कुम्भकर्ण-बिना लङ्कापुरी शून्याकार * नर-वानरेर हाते नाहिक निस्तार
इन्द्र-युद्धे उद्धारिल तोमादेर पिते * तोमरा राखह नर-वानरेर हाते
सेइ पुत्र जन्मये कुलेर अलंकार * पितृशत्रु मारि ये शोधये पितृ-धार ३५
राजाज्ञा पाइया दोंहे रथे गिया चड़े * हस्ती घोड़ा ठाट सैन्य नड़े मुड़े-मुड़े
सैन्येर पायेर भरे कम्पिता मेदिनी * दु'भायेर संगे ठाट आट-अक्षौहिणी
संग्राम करिते यात्रा करे दुइ वीर * देखादेखि हैल गिया गड़ेर बाहिर
दुर्ज्जय-शरीर-दोंहे पर्व्वत-आकार * पश्चिम-दुयारे गेल करि मार-मार
राक्षस-वानर ठाट मिशामिशि हैल * गाछ-पाथर ल'ये कपि जुझिते आइल ३६

तबे दुइ दल, कोपेते पागल, परस्परे हारा हारि।
अनल-निकरे, विरल-तिमिरे, करितेछे मारामारि॥
शत निशाचर, धरि धनुःशर, कठोर कुठार धरि।
वानर उपरे, सम्प्रहार करे, चक्र गदा असि मारि॥

दशानन ने बुलवा भेजा। दोनों भाइयों ने आकर सिर नवाया। रावण ने कहा, देखो बेटे, लंका का हाल देखो। तुम दोनों भाई बड़े पराक्रमी हो—तुम दोनों भाइयों के पराक्रम से त्रिभुवन पराभूत है। तुम्हारे पिता के बाहुबल के कारण ही मैं विजयी बना रहा। आज मैं कुम्भकर्ण के शोक से आँसुओं में डूबा हुआ हूँ। कुम्भकर्ण के बिना लंकापुरी सूनी है। मुझको लगता है कि इस नर-वानर के युद्ध में मेरा निस्तार नहीं। इन्द्र के साथ युद्ध में तुम लोगों के पिता ने मुझे उबारा था। अब तुम लोग मुझको नर-वानरों के हाथ से बचाओ। वही पुत्र कुल का अलंकार माना जाता है जो पिता के शत्रुओं का हनन कर पितृ-ऋण चुका देता है॥ ३५॥

राजा का आदेश पाकर दोनों राक्षस जाकर रथ पर सवार हो गये। हाथी-घोड़े सहित सारी सेना आन्दोलित होने लगी। सेना की पदचाप से पृथ्वी थरथराने लगी। दोनों भाइयों के साथ आठ अक्षौहिणी सेना चली। दोनों वीर संग्राम करने चल पड़े, गढ़ से बाहर निकलने पर दोनों का सामना हुआ। दोनों के ही शरीर पर्वत-समान दुर्जय थे। वे मार-काट मचाते हुए पश्चिमद्वार पर जा धमके। राक्षसों और वानरों की सेनाएँ आपस में गुथ गयीं। पेड़-पत्थर लेकर वानर लड़ने के लिए आ गये॥ ३६॥

तब दोनों दल क्रोध से उन्मत्त हो एक दूसरे को हराने के लिए यों मार करने लगे मानों अनल और अन्धकार में संग्राम छिड़ा हो। सैकड़ों निशाचर धनुष-बाण और कठोर कुठार लेकर वानरों पर प्रहार करने लगे। वे चक्र, गदा और तलवार का भी प्रयोग करने लगे। इससे किसी का मुंड

ताहे कारो मुण्ड, कारो भुजदण्ड, कारो बुक फाटे बले।
कारो उरु-मूल, काहारो लाङ्गूल, कारो हस्त-पद-गले ॥
कोनजने शर, बिन्धिया जर्ज्जर, करितेछे कोनजन।
कारो गदाघाते, भङ्गे बुक-हाते, खड्गे करे विदारण ॥
ताहे कपि सब, करि घोर-रव, गिरि-तरु-शिलागण।
फेलि फेलि मारे, राक्षस-उपरे, करे उल्का-निक्षेपण ॥
ताहे चूर्ण करे, कत रात्रिचरे, कारो भाङ्गे शिर-बुक।
कारो उल्कानले, दहे मुण्ड-गले, कारो मुख सकौतुक ॥
केह मुष्ट्याघाते, भांगे कारो माथे, बुक भांगे पदाघाते।
दशन-नखरे, विदारण करे, बुक पाश पेट माथे ॥
काहारो घोड़ारे, आछाड़िया मारे, कोन कपि कारो गजे।
केह मारि लाथे, भांगे कारो रथे, ससारथि-हय-ध्वजे ॥
कत निशाचर, त्यजि असि-शर, हाताहाति रण करे।
केह मारे चड़, केह वा चापड़, केह मुटकी प्रहारे ॥
पाँच-सात-जन, राक्षस मिलन, धरि एक कपिवरे।
अस्त्रादि-प्रहारे, छिन्न-भिन्न क'रे, काहारो पराण हरे ॥
सेइ-अनुसारे, एक निशाचरे, अनेक वानर धरि।
मारे चड़-कील, बहुतर शिल, विदारये नखे करि ॥

कटा तो किसी का भुजदंड और किसी का वक्ष विदीर्ण हुआ, किसी की जाँघ कट गई तो किसी की पूँछ, कोई हाथ-पैरों से विहीन हो गया, किसी के गदाघात से किसी का सीना या हाथ टूटा तो कोई खड्ग से अंग-प्रत्यंग काटने लगा। इधर सारे कपि घोर नाद करते हुए राक्षसों पर इस प्रकार पेड़ और पत्थर बरसाने लगे मानों उल्कापात हो रहा हो। इससे कितने ही निशाचरों के सिर और शरीर टूटे। उल्का की आग से कितने ही निशाचर मर गये। कोई घूँसा मारकर सिर तोड़ने लगा तो कोई पदाघात से वक्ष। दाँत और नाखूनों से कोई सीना, पेट, सिर चीरने लगा। कोई कपि किसी के घोड़े को उठाकर जमीन पर पटक देता तो कोई कपि किसी हाथी को। कोई तो लात जमाकर सारथी, अश्व और ध्वजा समेत रथ को तोड़ देता। कितने ही निशाचर धनुष-बाण और असि छोड़कर हाथापाई का युद्ध करने लगे। कोई चपेटाघात करता तो कोई झाँपड़ मारता और कोई मुक्का। पाँच-सात राक्षस मिलकर एक वानर को धर दबाते। अस्त्र आदि के प्रहार से उसका अंग छिन्न-भिन्न कर उसके प्राण हर लेते। इसी प्रकार कई कपि एक निशाचर को पकड़कर घूँसा-मुक्का मारते और नाखून से उसको चीर डालते। ऐसे तुमुल समर से घबड़ा कर कपि जाम्बवान रोने लग गये। हाय-हाय अब तो

एरूप तुमुल, समरे व्याकुल, कान्दे कपि जाम्बवान।
म'ल रे म'ल रे, गेल रे गेल रे, आर ना रहिल प्राण ॥
बड़ वीरसब, करि घोर-रव, कहितेछे बार-बार।
धर धर धर, मार मार मार, पुना राखिब रि आर ॥
एइ त प्रकारे, तुमुल समरे, मातिया कोपेर मरे।
कृत्तिवास भणे, राम-दशानने, सेना हानाहानि करे ३७।

तार मध्ये वज्रकण्ठे-नामे निशाचर ❋ मारिलेक गाढ़ गदा अंगद-उपर
किछुकाल काँपि ताहे कपीन्द्र-कुमार ❋ सुस्थ हये शीघ्र पुनः कैल आगुसार
करे धरि एकखान शिखरि-शिखर ❋ मारिलेक वज्रकण्ठ-मस्तक-उपर
ताहार प्रहारे प्राण परित्याग करि ❋ वज्रकण्ठ-वीर पड़े वसुधा-उपरि
ताहा देखि कोपेते कम्पित संकम्पन ❋ रणे प्रवेशिल करि रथे आरोहण
सेह वेगे वृष्टि करि बाण बहुतर ❋ अंगदेर अंगगणे करिल जर्ज्जर
शत्रुसुत-सुत सहि से-सकल शरे ❋ लाफ दिया उठे तार रथेर उपरे
तार कर हइते कोदण्ड काड़ि लैया ❋ चरण-चापने तारे फेलिल भांगिया
पदाघाते रथखान करि प्रमथन ❋ नाशिला नखरे करि तुरंगमगण
स्यन्दन छाड़िया तबे सेइ संकम्पन ❋ आकाशे उठिल खड्ग करिया धारण
ताहादेखि महाबल बालिर नन्दन ❋ लम्फ दिया तार पिछे करिल धावन
किञ्चित् दूरेते तारे बले करे धरि ❋ काड़िया लइल तार खड्ग आर फरी

प्राण बचने वाले नहीं। बड़े-बड़े वीर घोर-नाद करते हुए बार-बार कहने लगे—पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो, शत्रु एक भी न बच सके। कृत्तिवास कहते हैं कि इसी प्रकार घोर समर में प्रचंड क्रोध में उन्मत्त हो राम और दशानन की सेना एक दूसरे पर प्रहार करने लगी ॥ ३७ ॥

उनमें एक वज्रकंठ नाम का निशाचर था जिसने अंगद के शरीर पर गदा का पूर्ण प्रहार किया। इससे कपीन्द्रकुमार कुछ देर के लिए लड़खड़ा गये किन्तु शीघ्र ही स्वस्थ होकर आगे बढ़े। एक पर्वत को चोटी समेत उखाड़ कर उन्होंने वज्रकंठ के सिर पर दे मारा। उस प्रहार से वीर वज्रकंठ ने प्राण त्याग दिया और धरती पर जा गिरा। यह देखकर क्रोध से काँपते हुए संकम्पन ने रथ में सवार हो रणक्षेत्र में प्रवेश किया। उसने वेग से बाण बरसाते हुए अंगद के अंग-अंग को छलनी बना दिया। शक्र-सुत (बालि) के पुत्र ने इन बाणों को सहन किया, फिर उछलकर वह उस रथ पर चढ़ गया। उसके हाथों से धनुष छीन कर पैरों से दबाकर तोड़ डाला। पदाघात से रथ को चूर्ण-विचूर्णकर नखों से उसने अश्वों को मार डाला। तब रथ छोड़ कर संकम्पन ने खड्ग ले लिया और आकाश में चढ़ गया। यह देखकर महाबली बालीनन्दन (अंगद) भी कूद कर उसके पीछे दौड़ा। कुछ ही दूर

तबे सिंहनाद करि अति कुतूहले * सेइ खड्ग धरि कोप दिला तार गले
ताहे छिन्न ह'ये सेह येन उपवीत * आकाशे हइते हैल भूतले पतित
तबे सिंहनाद करि बालिर कुमार * भूतले नामिल शब्द करि मार मार
तबे शोणिताक्ष-वीर लौह-गदा धरि * उपस्थित हइल अंगद-बराबरि
प्रजंघ यूपाक्ष नामे आर दुइजन * रथे चड़ि तार काछे करिल धावन
श्रीमैन्द द्विविद दुइ वीर ता' देखिया * अंगदेर दुइ पाशे दाँड़ाल आसिया
तबे सेइ निशाचर-तिनजन-संगे * तिन कपि-वीर युद्ध आरम्भिल रंगे
नानावृक्ष उपाड़िया कपि तिनजन * करितेछे तिन निशाचरे निक्षेपण
ताहा देखि खड्ग धरि राक्षस प्रजंघ * खण्ड-खण्ड करि काटे सेइ वृक्षसंघ
तबे सेइ तिनजन शाखामृगवर * निक्षेप करिला रथ-भुरंग-कुञ्जर
निरीक्षण करिया यूपाक्ष रणे दक्ष * काटिल से-सब एड़ि शर लक्ष-लक्ष
तबे पुनः श्रीमैन्द द्विविद बालिसुत * वर्षण करये वृक्ष बहुत-बहुत
शोणिताक्ष से-सकल सत्वर हइया * चूर्ण करि दिल गुरु गदा घुराइया
परेते प्रजंघ खरशान खड्ग धरि * बालिपुत्रे बधिवारे आसे त्वरा करि
निकटे निरखि तारे तारार तनय * सन्धान करिल शालशाखी अतिशय
सेइ त तरुते तारे ताड़न करिला * आर तार बाहुमूले मुटकि मारिला
प्रजंघेर बाहु ताहे विभिन्न हइल * हस्त हैते खड्गखान खसिया पड़िल

पर उसने उसको पकड़ लिया और अपनी शक्ति से उसके खड्ग और ढाल छीन लिये। फिर सिंहनाद करते हुए उसी खड्ग से उसने उसके गले पर वार किया, जिससे उसका गला जनेऊ की तरह कट कर गिरा और वह आकाश से धरती पर आ गिरा। फिर सिंहनाद करते हुए बालीनन्दन धरती पर मार-मार करते हुए उतरे। फिर वीर शोणिताक्ष लौहगदा लेकर अंगद के सामने उपस्थित हुआ। तब प्रजंघ और यूपाक्ष नामक और दो राक्षस रथ पर सवार हो उनकी ओर लपके। यह देखकर श्रीमैन्द और द्विविद नामक दो वीर, अंगद के दोनों ओर आकर खड़े हो गये। फिर उन तीनों निशाचरों के साथ तीन कपि-वीर युद्ध करने लग गये। तीनों कपि तरह-तरह के वृक्ष उखाड़ कर तीन निशाचरों पर फेंकने लगे। यह देखकर राक्षस प्रजंघ ने खड्ग लेकर उन वृक्षों को खंड-खंड कर दिया। तब उन तीनों शाखा-मृगों (वानरों) ने रथ, तुरंग और कुंजर फेंकना आरम्भ कर दिया। रण में दक्ष यूपाक्ष ने लाख-लाख बाण फेंककर उनको नष्ट किया। तो फिर श्रीमैन्द, द्विविद और अंगद अनेक वृक्ष फेंकने लग गये। शोणिताक्ष ने उन सभी को भारी गदा घुमाते हुए चूर्ण कर डाला। बाद में प्रजंघ तेज खड्ग लेकर बालीपुत्र का वध करने के लिए दौड़ा। तारा के तनय (अंगद) ने उनको निकट देख एक शाल वृक्ष उखाड़ कर उन पर दे मारा। उस वृक्ष की चोट के अतिरिक्त उसकी बाँह पर उसने एक मुक्का भी जमा दिया जिससे

स्थिर ह'ये प्रजंघ परेते किछुकाले * मारिल प्रबल मुष्ठि अंगद-कपाले
ताहे दुइ-दण्ड-काल रहि अचेतन * चेतन पाइल पुनः बालिर नन्दन
सुगभीर सिंहनाद करि कोपमरे * प्रजंघ-उपरे मुष्ठि मारिल निर्भरे
ताहाते विदीर्ण हैल महामुण्ड तार * पड़िल से, येन वज्राहत शैलसार३८
क्षीणशर हइया यूपाक्ष खड्ग धरि * मारिवारे जाय तथा रथ परिहरि
तबे से यूपाक्ष वीरे मुटकि मारिया * धरिल श्रीमैन्द तारे बाहुते बेड़िया
एहेन समये शोणिताक्ष महासार * द्विविदेर वक्षे कैल गदार प्रहार
ताहे हत हैया सेइ अश्वीर नन्दन * किछुकाल रहिला कातर अचेतन
पुनः शोणिताक्ष जबे घुराय गदारे * सेइकाले धरि काड़ि लइल ताहारे
तबे त यूपाक्ष शोणिताक्ष दुइजन * श्रीमैन्द-द्विविद-संगे करे बहु-रण
केह कोनजने कभु करे आकर्षण * केह कोनजने करे दृढ़ आलिगन
केह कोनजने कभु ठेलि ल'ये जाय * केह कोनजने कभु बलेते घुराय
केह कोनजने कभु तुले उपरेते * केह कोनजने कभु फेले धरणीते
मध्ये मध्ये मुष्ट्याघात-कराघात करे * कभु विदारण करे दशन-नखरे
एइरूपे किछुकाल तुल्य हैल रण * परे अति कुपिल कपीन्द्र दुइजन २३९

प्रजंघ की बाँह टूट गई और हाथ से खड्ग नीचे गिर गया। कुछ देर में प्रजंघ स्थिर हुआ तो अंगद के माथे पर उसने एक घूँसा जमा दिया। इससे दो दंड अचेतन रहने के बाद बालीनन्दन होश में आए। क्रोध से सिंहनाद करते हुए उन्होंने प्रजंघ पर घूँसा जमाया। इससे उसका महामुंड टूट गया और वह वज्र के आघात से विदीर्ण पर्वत की भाँति गिर पड़ा ॥ ३८ ॥

तब धनुष-बाण से रहित होकर यूपाक्ष ने खड्ग थाम लिया और रथ का परित्याग कर उसको मारने के लिए चल पड़ा। तब श्रीमैन्द ने वीर यूपाक्ष को मुक्का मार उसे बाँहों से जकड़ लिया। ऐसे ही समय बलवान शोणिताक्ष ने द्विविद के वक्ष पर गदा का प्रहार किया। उससे घायल होकर अश्विनी-कुमार का नन्दन द्विविद कुछ देर तक अचेतन पड़ा रहा। जब शोणिताक्ष ने फिर गदा घुमाई तो उसने उसको पकड़ कर छीन लिया। फिर तो यूपाक्ष और शोणिताक्ष दोनों मिलकर श्रीमैन्द और द्विविद के साथ मल्लयुद्ध करने लगे। कोई किसी को कभी खींचता तो कोई किसी को बाहुपाश में कस कर बाँध लेता। कोई किसी को धकेलता हुआ ले जाता तो कोई किसी को बल से घुमाने लग जाता। कोई किसी को ऊपर उठा लेता तो कोई किसी को धरती पर पटक देता। कभी-कभी वे झाँपड़ और चाँटा जमाते तो कभी दाँत और नाखून से घायल करने लगते। इस प्रकार कुछ देर तक बराबर लड़ाई चलती रही, यहाँ तक कि दोनों कपीन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ २३९ ॥

इन्बत्तुळ् इन्बम् विळैयादान् तुन्बत्तुळ्
तुन्बम् उऱुदल् इलन् ॥ ९ ॥

सुख के समय न मुग्ध हुआ जो, सुख में हुआ न जो तल्लीन,
दुःख-भ्रमर में ग्रस्त, किन्तु वह अचल सदा है दुःखविहीन ॥ ९ ॥

जो व्यक्ति सुख के समय सुख में मुग्ध नहीं होता, वह दुख के समय विकल नहीं होता ॥ ९ ॥

इन्नामै इन्बम् ऎन्क्कॊळिन् आहुम् तन्
ऒन्नार् विळैयुम् शिऱप्पु ॥ १० ॥

संकट में न विषाद, दुःख में भी जो रहते सदा प्रसन्न ।
उनकी इस गरिमा को रिपु भी देख-देख होते अवसन्न[1] ॥ १० ॥

जो व्यक्ति कठिनाइयों में भी सुख का अनुभव करता है उसकी महत्ता का समादर उसके शत्रु भी करेंगे ॥ १० ॥

शासन-नीति-विवेचन

अदिहारम् (अध्याय) ६४

अमैच्चु (मंत्री-लक्षण)

करुवियुम् कालमुम् शॆय्हैयुम् शॆय्युम्
अरुविनैयुम् माण्ड दमैच्चु ॥ १ ॥

कौन काम, किस समय, कौन विधि, समुचित साधन का उपचार[2]—
इनमें कुशल-समर्थ, मंत्रिपद हेतु योग्य है सर्व प्रकार ॥ १ ॥

मंत्री वह होता है जो कोई विशेष कार्य करते समय उसके लिए आवश्यक साधनों का पता लगाने, समय का चयन करने, विधिवत् कार्य करने और उसका निर्धारण करने की क्षमता रखता है ॥ १ ॥

वन्कण् कुडिकात्तल् कट्ऱिदल् आळ्विनैयो
डैन्दुडन् माण्ड दमैच्चु ॥ २ ॥

दृढ़निश्चयी, प्रजाप्रतिपालक, धर्म-नीति का समुचित ज्ञान,
कुशल, सदाश्रमशील—पाँच ये श्रेष्ठ सचिव की हैं पहिचान ॥ २ ॥

कार्य करते समय अविचलित रहना, प्रजा का पालन करना, नीति

---

१ खिन्न २ उपाय ।

ग्रन्थों का अध्ययन कर कर्तव्य और अकर्तव्य को जानना, प्रयासशील रहना—ये पाँचों तत्व मंत्री के लक्षण हैं ॥ २ ॥

पिरित्तलुम् पेणिक्कॊळलुम् पिरिन्दार्प्
पॊरुत्तलुम् वल्ल दमैच्चु ॥ ३ ॥

भेद नीति से रिपु-असंगठित, बिछुड़े अपनों से सम्बन्ध,
मित्र संगठित मृदुबन्धन में, यही मंत्रि का कुशल प्रबंध ॥ ३ ॥

वही योग्य मंत्री होता है जो शत्रुओं के सहयोगियों को उनसे अलग कर पाता है, अपने मित्रों को मधुर व्यवहार से अपने से अलग नहीं होने देता और जो शत्रु हो गये हैं उन्हें फिर से मित्र बना लेता है ॥ ३ ॥

तॆरिदलुम् तेर्न्दु शॆयलुम् ऒरुतलैयाच्
चॊल्ललुम् वल्लदमैच्चु ॥ ४ ॥

सही विचार-विमर्श, सुनिर्णय, देता है दृढ़-अटल सलाह
सफल कार्य-सञ्चालक—ऐसे कुशल सचिव से है निर्वाह ॥ ४ ॥

वही मंत्री होता है जो किसी कार्य के समूचे स्वरूप को पहचानता है, सर्वोत्तम रूप से उस कार्य को करता है और साहसपूर्वक यह परामर्श देता है कि यह कार्य करणीय है ॥ ४ ॥

अऱत्तिन् तात्तुमैन्द शॊल्लान् ऎञ्ञान्ऱुम्
तिऱत्तिन्दान् तेर्च्चित् तुणै ॥ ५ ॥

धर्माधर्म-विवेक सदाशय जिसकी वाणी में है सार
कर्म-कुशल है, वही मंत्रिपद-हेतु युक्त है सर्वप्रकार ॥ ५ ॥

उत्तम मंत्री यह जानता है कि शासक का धर्म क्या है; वह शांत रहकर अपरे विचारों को दृढ़तापूर्वक प्रकट करता है और वह सर्वदा धर्म-पालन की उचित जानकारी रखता है ॥ ५ ॥

मदिनुट्पम् नूलो डुडैयार्क् कदिनुट्पम्
यावुळ मुन्निऱ् पवै ॥ ६ ॥

प्रखर विचक्षण[1] बुद्धि, साथ में विविध शास्त्रों का है ज्ञान,
ऐसे मंत्री को न जटिल कुछ जग में, सबकुछ है आसान ॥ ६ ॥

स्वभावतः तीक्ष्ण बुद्धि और विद्या-ज्ञान से युक्त मंत्री के लिए कौन-सा ऐसा कार्य है जो कठिन है ? ॥ ६ ॥

---

१ कुशाग्र, तीक्ष्ण

शॆयऱकै अऱिन्दक् कडैत्तुम् उलुहत्
तियऱ्कै अऱिन्दु शॆयल् ॥ ७ ॥

विधि-निषेध का ज्ञान भले ही सकल शास्त्रों पर अधिकार,
है ज्ञातव्य, सफल होने को, समसामयिक-लोकव्यवहार ॥ ७ ॥

भले ही कोई मंत्री कार्य करने की रीतियों का जानकार क्यों न हो; फिर भी उसे चाहिए कि विश्व की सामयिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त कर तदनुसार कार्य करे ॥ ७ ॥

अऱि कॊऩ्ऱऱियाऩ् ऎऩिऩुम् उऱुदि
उळैयिरुन्दाऩ् कूऱल् कडऩ् ॥ ८ ॥

शासक बुद्धिविहीन, भले ही सचिव-सीख पर धरे न ध्यान
किन्तु सचिव का धर्म—न हिचके, देता रहे सामयिक ज्ञान ॥ ८ ॥

यद्यपि रक्षक शासक बुद्धिहीन हो और मंत्री के परामर्श को भी ठुकरा दे फिर भी मंत्री का धर्म है कि वह सुनिश्चित और सही परामर्श दे ॥ ८ ॥

पळुदॆण्णुम् मन्दिरियिऩ् पक्कत्तुळ् तॆव्वोर्
ऎळुपदु कोडि युऱुम् ॥ ९ ॥

सचिव कुचक्री, जो नृप के विपरीत बिछाता रहता शूल
कोटि-कोटि रिपुओं से बढ़ कर वह मंत्री विनाश का मूल ॥ ९ ॥

शासक का विनाश चाहनेवाले मंत्री के बजाय शासन के लिए सत्तर करोड़ शत्रुओं का होना कहीं अच्छा है ॥ ९ ॥

मुऱैप्पडच् चूळ्न्दुम् मुडिविलवे शॆय्वर्
तिऱप्पा डिलाअ दवर् ॥ १० ॥

जोड़-तोड़ योजना खूब है, किन्तु न उनका सविधि प्रयोग,
कार्य-कुशल यदि नहीं, मंत्रणा का बोलो फिर क्या उपयोग ॥ १० ॥

जो मंत्री कार्य समाप्त करने की क्षमता नहीं रखते वे कार्य की उचित योजना तैयार करने के बावजूद उसे कार्यान्वित करते समय विफल ही होंगे ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६५

शॊल्वऩ्मै (वाक्पटुता)

नानलम् ऎऩ्ऩुम् नलऩुडैमै अन्नलम्
यानलत्तुळ्ळदूउम् अऩ्ऱु ॥ १ ॥

कुशल वाग्मी[1] वचनों के प्रतिपादन[2] में यदि हुआ समर्थ—
सकल गुणों से पृथक्, एक यह गुण विशेष रखता है अर्थ[3] ॥ १ ॥

वचन-कौशल की विशेषता से युक्त होना, मंत्री का लक्षण है। यह विशेषता अन्य सभी विशेषताओं से पृथक् है। [यह सर्वथा भिन्न है।] ॥ १ ॥

आक्कमुम् केडुम् अदऩाल् वरुदलाल्
कात्तोम्बल् शॊल्लिऩ्कट् चोर्वु ॥ २ ॥

वाणी से सम्भव अनर्थ[4] है, वाणी से सम्भव है अर्थ[5];
अतः सावधानी से बोलें, कभी न निकले वाणी व्यर्थ ॥ २ ॥

शब्दों से शासक की श्रीवृद्धि भी हो सकती है और विनाश भी। अतः मंत्री को चाहिए कि शब्दों के प्रयोग में वह अनौचित्य को न आने दे ॥ २ ॥

केट्टार्प् पिणिक्कुम् तहैयवाय्क् केळारुम्
वेट्प मॊऴिवदाम् शॊल् ॥ ३ ॥

वाणी वही कि उन्मुख[6] श्रोताओं पर डाले उचित प्रभाव,
यही नहीं, विमुखों[7] में भी उपजाये जो सुनने का चाव[8] ॥ ३ ॥

मंत्री की वाणी ऐसी हो कि उससे मित्र संग रह सकें और शत्रु भी शत्रुता भूलकर मित्र बन सकें ॥ ३ ॥

तिऱऩऱिन्दु शॊल्लुह शॊल्लै अऱऩुम्
पॊरुळुम् अदऩिऩूउङ् गिल् ॥ ४ ॥

श्रोता की योग्यता समझकर, समुचित वाणी करो प्रयोग—
यही वाक्चातुर्य, न गुण-संपति का अधिक जगत् में योग ॥ ४ ॥

मंत्री को चाहिए कि वह श्रोता की योग्यता को समझकर बोले। इससे बढ़कर कोई गुण या धन नहीं है ॥ ४ ॥

शॊल्लुह शॊल्लैप् पिऱिदोर्शॊ लच्चॊल्लै
वॆल्लुञ्जॊल् इऩ्मै अऱिन्दु ॥ ५ ॥

कथन अकाट्य, तर्क-खण्डन की विरोधियों को मिले न राह,
दृढ़विश्वास-वाक्पटुता का तभी सफल है वाक्-प्रवाह[9] ॥ ५ ॥

यह जानने के बाद कि किसी दूसरे के पास हमारे शब्दों का खंडन

---

१ बोलने में दक्ष २ कथन को पुष्ट करना ३ महत्व ४ बुरा ५ भला
६ ध्यान देनेवाले ७ विरोधी, कान न देनेवाले ८ रुचि ९ वक्तृता का प्रवाह।

करने योग्य शब्द नहीं है, मंत्री को बोलना चाहिए। [अर्थात् मंत्री को जब अपने विचारों पर इतना विश्वास हो कि कोई दूसरा उनका खंडन नहीं कर सकता तभी उसे अपने विचारों को प्रकट करना चाहिए।]॥ ५ ॥

वेट्पत्ताम् शॊल्लिप् पिऱर्शॊऱ् पयन्कोडल्
माट्चियिन् माशट्ऱार् कोळ् ॥ ६ ॥

निज वाणी की मधुर व्यञ्जना[1] हर लेती श्रोता का ध्यान,
सहज समझ ले भाव दूसरों के—वह सचमुच वाक्-सुजान ॥ ६ ॥

जो मंत्री अपने धर्म के पूर्ण ज्ञाता होते हैं वे इस प्रकार बोलते हैं कि श्रोता उनसे और सुनना चाहें और साथ ही, वे दूसरों की बातों का सार भी ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥

शॊलल्वल्लन् शोर्विलन् अञ्जान् अवनै
इहल्वॆल्लल् यार्क्कुम् अरिदु ॥ ७ ॥

मौक़े पर अचूक, निर्भय-मन, युक्ति-पूर्ण है वाक्प्रहार;
विरोधियों में उस वाणीपुंगव[2] की कभी न होती हार ॥ ७ ॥

जो मंत्री अपने विचारों को उचित ढंग से प्रकट कर सकता है, उन्हें प्रकट करने में आलस्य या विस्मरण नहीं करता और न ही उससे डरता है; उसे अपनी चतुराई से कोई जीत नहीं सकता ॥ ७ ॥

विरैन्दु तॊळिल्केट्कुम् ञालम् निरन्दिऩिदु
शॊल्लुदल् वल्लार्प् पॆऱिन् ॥ ८ ॥

कुशल नीति से, मधु वचनों में, जो महत्व का करे बखान,
उसके मोहक कथनों को सिर-आँखों लेता सहज जहान ॥ ८ ॥

जो मंत्री महत्वपूर्ण बातों को नियमित रूप से और आकर्षक ढंग से बताता है उसकी उन बातों को यह संसार स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

पलशॊल्लक् कामुऱुवर् मऩ्ऱमा शट्ऱ्
शिलशॊल्लल् तेट्ऱादवर् ॥ ९ ॥

साफ़-साफ़, थोड़े शब्दों में रख सकते जो नहीं विचार,
घुमा-फिरा कर निज बातों में वृथा वही देते विस्तार ॥ ९ ॥

जो मंत्री संक्षेप में स्पष्ट रूप से अपनी बात कहने की क्षमता नहीं रखते वे कई शब्दों से घुमा-फिराकर बोलना पसंद करेंगे ॥ ९ ॥

---

१ विचार व्यक्त करने की शक्ति २ श्रेष्ठ वक्ता।

इणरूऴ्त्तुम् नाऱा मलरऩैयर् कट्ऱ
दुणर विरित्तुरैया दार् ॥ १० ॥

समझा सकते नहीं, न प्रतिवादित कर सकते अपना ज्ञान;
वृथा ज्ञान है, खिले हैं वृथा सुमनगुच्छ-निर्गन्ध[1] समान ॥ १० ॥

जो व्यक्ति अपने अर्जित ज्ञान को दूसरों को स्पष्ट रूप से नहीं बता पाते वे उस पुष्प के समान हैं जो गुच्छ के रूप में खिलने के बावजूद सौरभ-विहीन रहता है ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६६

विऩैत्तूय्मै (कर्म-पवित्रता)

तुणैनलम् आक्कम् तरूउम् विऩैनलम्
वेण्डिय ऎल्लाम् तरुम् ॥ १ ॥

सहायता अनुकूल भले ही हमको दे सम्पत्ति महान्;
अपने पावन कर्म किन्तु, जो चाहें, करते सकल प्रदान ॥ १ ॥

अच्छी सहायता केवल संपत्ति प्रदान करेगी। किन्तु उत्तम कर्म अपेक्षित सभी कुछ प्रदान करेगा ॥ १ ॥

ऎऩ्ऱुम् ऒरुवुदल् वेण्डुम् पुहऴोडु
नऩ्ऱि पयवा विऩै ॥ २ ॥

लाभ नहीं, यश नहीं, न हित है, ऐसे सदा वृथा हैं कर्म;
अकरणीय हैं, उन्हें त्याग देना है समुचित पावन धर्म ॥ २ ॥

जो कर्म शासक को न तो यश प्रदान करेगा और न ही उसका हित करेगा उस कर्म को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए ॥ २ ॥

ओऒदल् वेण्डुम् ऒऴि माऴ्हुम् शॆय्विऩै
आअदुम् ऎऩ्ऩुम् अवर् ॥ ३ ॥

विमल कीर्ति के जो भूखे हैं, जिनको प्रिय है धवल[2] भविष्य,
कभी आचरण पर न कालिमा[3] आये, उनका शुचि[4] कर्तव्य ॥ ३ ॥

जो महान् बनना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे ऐसे कर्म न करें जिनसे उनकी कीर्ति पर धब्बा लगे ॥ ३ ॥

---

१ गन्धहीन फूलों का गुच्छा २ उज्वल ३ कालिख, धब्बा ४ पवित्र।

इडुक्कट् पडिनुम् इळिवन्द शॆय्यार्
नडुक्कट्ऱ काट्चि यवर् ॥ ४ ॥

विमल बुद्धि पर सदा अटल हैं, मिला जिन्हें है शुद्ध विवेक,
पतित कर्म पर कभी न उतरें, उन पर संकट भले अनेक ॥ ४ ॥

जो लोग बिना विचलित हुए सभी परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से समझते हैं वे स्वयं कठिनाइयों के शिकार होने के बावजूद नीच कर्म नहीं करेंगे ॥ ४ ॥

ऎट्ऱेन् ऱिरङ्गुव शॆय्यऱ्क शॆय्वानेल्
मट्ऱन्न् शॆय्यामै नन्ऱु ॥ ५ ॥

करो न ऐसे काम कभी, पछताना जिनका हो अंजाम[1]
किया अगर तो ग्लानि त्याग, दुहराना कभी न वैसा काम ॥ ५ ॥

कोई मंत्री ऐसा कार्य न करे जिससे उसे पछताकर यह कहना पड़े कि मैंने यह क्या कर दिया है। यदि भ्रमवश वह ऐसा कार्य कर भी दे तो अच्छा यह होगा कि वह उस पर दुख न करे ॥ ५ ॥

ईन्ऱाळ् पशिकाण्बान् आयिनुम् शॆय्यऱ्क
शान्ऱोर् पऴिक्कुम् विनै ॥ ६ ॥

जननी विकल क्षुधा से ! फिर भी अविचल रहे तुम्हारा ध्यान
करो न गर्हित[2] कर्म ! कि निन्दा करें तुम्हारी व्यक्ति-महान् ॥ ६ ॥

भले ही कोई अपनी जननी को भूखी देखे; फिर भी ऐसा कार्य नहीं किया जाना चाहिए जिसकी महान् लोग निन्दा करेंगे ॥ ६ ॥

पऴिमलैन् दॆय्दिय आक्कत्तिऱ् शान्ऱोर्
कऴिनल् कुरवे तलै ॥ ७ ॥

नीच कमाई, नीच वृत्ति से अर्जित धन का कहीं न मूल्य;
निर्धन किन्तु सदाचारी का सुयश जगत् में कहीं अमूल्य ॥ ७ ॥

नीच कर्मों से अपयश का पात्र होकर जो संपत्ति प्राप्त की जाती है उससे विशुद्ध जीवन चलानेवालों की निर्धनता कहीं अच्छी है ॥ ७ ॥

कडिन्द कडिन्दोरार् शॆय्दार्क् कवैदाम्
मुडिन्दालुम् पीऴै तरुम् ॥ ८ ॥

बच न सके निन्दित कर्मों से, सत्पथ त्याग हुए पथभ्रष्ट,
क्षणिक सफलता मिलने पर भी निश्चित तुम्हें अन्त में कष्ट ॥ ८ ॥

---

१ अन्तिक परिणाम २ निन्दित, बुरा।

महान् लोगों ने जो कार्य करने से मना किया है उससे जो लोग बच नहीं पाते, प्रत्युत वैसा कार्य करते हैं, वे सफल नहीं होंगे। यदि वे सफल हो भी जाएँ तो भी उससे उन्हें दुख ही होगा। [पीऴै = दुख] ॥ ८ ॥

अऴक्कॊण्ड ऎल्लाम् अऴप्पोम् इऴप्पिऩुम्
पिऱ्पयक्कुम् नऱ्पा लवै ॥ ९ ॥

दुख देकर यदि लाभ कमाया, निश्चित सदा अन्त में दुःख;
सत्पथ में सब गवाँ दिया, फिर भी भविष्य में निश्चित सुक्ख ॥ ९ ॥

दूसरों को रुलाकर नीच कार्यों से जो भी उपलब्ध किया जाय उससे बाद में हाथ धोकर स्वयं रोना होगा। अच्छे कर्म करने से भले ही सब कुछ शुरू में नष्ट हो जाय, फिर भी बाद में सत्परिणाम ही निकलेंगे ॥ ९ ॥

शलत्तार् पॊरुळ् शॆय्दू मार्त्तल् पशुमट्
कलत्तुळ् नीर् पॆय्दिरीइ यट्ऱु ॥ १० ॥

अपकर्मों[1] से प्राप्त शक्ति से, 'मैं सशक्त हूँ!'—ऐसा भान[2],
'मिट्टी के घट में जल सञ्चित' के समान व्यर्थ गुमान[3] ॥ १० ॥

यदि मंत्री छल-कपट से धन-वैभव प्राप्त कर शासक को धोखे में रखे तो वह कच्ची मिट्टी के घड़े में पानी को सुरक्षित रखने के बराबर होगा। [अर्थात् कच्ची मिट्टी के घड़े में पानी रखने से पानी सुरक्षित नहीं रह सकेगा और घड़े की भी सुरक्षा नहीं होगी। उसी प्रकार छल-कपट से प्राप्त धन-वैभव स्वयं भी नष्ट होगा और शासक को भी नष्ट करेगा।] ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६७

विनैत्तिट्पम् (कर्म-क्षमता)

विऩैत्तिट्पम् ऎऩ्ब दॊरुवऩ् मऩत्तिट्पम्
मट्ऱैय ऎल्लाम् पिऱ ॥ १ ॥

कार्य-दक्षता[4] सुलभ व्यक्ति में, जिसमें सुलभ कार्य-संकल्प;
अन्य सकल क्षमताओं में इस क्षमता का है नहीं विकल्प[5] ॥ १ ॥

---

१ बुरे कर्मों २ प्रतीति, मालूम पड़ता है ३ अनुमान ४ कार्य-कुशलता
५ तुलना में अन्य कोई योग्यता नहीं।

मगर इधर तवज्जु: नहीं करते कि यह मज़ाक़ बिगाड़ा किसने ? कहा जाता है कि यहाँ का क़ौमी मज़ाक़ इसलिए बिगड़ गया कि यहाँ दरअस्ल कोई क़ौम ही नहीं थी, और इसका ख़याल नहीं किया जाता कि यहाँ की क़ौमीयत को बिगाड़ा किसने ? और किसकी करिश्म:-साज़ियों ने लोगों से उनकी पुरानी वज़ा छुड़ा दी ? सच यह है कि—"अय बादे सबाईं हम: आवुर्द ए-तुस्त"[1] ।

सआदत अली ख़ाँ ने पहले कोठी फ़रहतबख़्श पचास हज़ार रुपये पर जनरल मार्टिन से मोल ली । इसी में रहना शुरू किया और उसके मुत्तसिल और कई मकान बनवाए । फिर वहाँ करीब ही, साहब रेज़ीडेण्ट की सुकूनत के लिए टेढ़ी कोठी तामीर की, जिसके खण्डहर रेज़ीडेंसी के अन्दर पड़े हुए हैं । इसके बाद अपने दरबार के लिए इन्होंने लाल बारहदरी तामीर कराई जिसमें अब कुतुबख़ाना है, और उन दिनों क़स्रुस्सुल्तान[2] के नाम से मशहूर थी । इसके अलावा दरिया पार इन्होंने दिल-आराम नाम एक नई कोठी तामीर की और इसी सिलसिले में एक बलन्द टेकरे पर जो अब सदर यानी लश्कर-गाहे लखनऊ के इलाक़े में वाक़िअ हुआ है, और जहाँ सारे शहर, गिर्द के मैदानों और दरिया का दिलकश मंज़र नज़र के सामने हो जाता है, एक ख़ूब-सूरत कोठी तामीर की और दिल-कुशा इसका नाम रखा । इसी तरह एक और कोठी तामीर की जिसका नाम हयात-बख़्श क़रार दिया । मगर वह कोठी नव्वाब सआदत अली ख़ाँ के बाद के फ़रमाँ-रवायाने अवध के इस्तेमाल में नहीं रही । इसमें ग़दर से पहिले मेजर बैंक रहते थे और ग़दर के बाद यह मामूल[3] था कि अंग्रेज़ी गवर्नमेण्ट की तरफ़ से जो मुअज़्ज़ज़ योरोपियन अवध के चीफ़ कमिश्नर मुक़र्रर होके आते, इसी कोठी में क़ियाम करते ।

मज़कूरेबाला कोठियों के अलावा नव्वाबे मम्दूह ने मशहूर इमारतें मुनव्वर-बख़्श और ख़ुरशीद-मंज़िल भी तामीर कराईं और चौपड़ का अस्तबल भी इन्हीं की यादगार है । मगर इन सब इमारतों की तामीर में पुरानी वतनी इमारत की वज़ा[4] तर्क कर दी गई और योरुप से आई हुई नई जिद्दतें[5] इख़्तियार की गईं । और ज़ाहिर है कि इस बारे ख़ास में, लखनऊ का कोई क़दीम मकान उन नई आलीशान इमारतों का मुक़ाबिला न कर सकता था जो ख़ुद दौलते बरतानिया के असर और इहतिमाम से हिन्दोस्तान के मुख़्तलिफ़ शहरों में तामीर हो चुकी हैं या रोज़-ब-रोज़ तामीर होती जाती हैं । ग़रज़ यही ज़माना है जबसे लखनऊ में इन क़दीम मज़ाक़ की इमारतों का ख़ात्मा हो गया जो तारीख़ी वक़अत[6] रखती हों और किसी ख़ास ख़ूबी के लिहाज़ से सैयाहों[7] को अपनी तरफ़ बुलाती हों ।

---

१ ऐ बादे सबा यह सब तेरा ही लाया हुआ है २ राजप्रासाद ३ रीतिरवाज, परिपाटी ४ बनावट ५ नवीनता ६ साख, महत्व ७ विश्व-भ्रमण करने वाले, पर्यटक ।

नव्वाब सआदत अली ख़ाँ ने लखनऊ के मग़रिबी हिस्से में एक बड़ा गंज बनवाया और उसकी आबादी और रौनक़ के लिए इस क़दर इहतिमाम किया कि उसके वास्ते ख़ास क़वानैन वज़अ किये गये और ताजिरों और दूकानदारों को ख़ास क़िस्म के हुक़ूक़ अता किए गये। इसने बड़ी रौनक़ पाई और आज तक बावजूदे कि शहर की आबादी से फ़ासले पर और बिलकुल अलग वाक़ै हुआ है, मुख़्तलिफ़ चीज़ों की सबसे बड़ी मंडी है और आलमनगर का स्टेशन सिर्फ़ इसी की वजह से रोज़-ब-रोज़ तरक़्क़ी पाता जाता है।

सआदतगंज के अलावा दूसरे बड़े बाज़ार जो नव्वाब मम्दूह के अहद में क़ायम और आबाद हुए हस्बे-ज़ैल हैं।

रकाबगंज (जो आज लोहे की सबसे बड़ी और ग़ल्ले वग़ैरः की एक मुम्ताज़[1] मंडी है), जंगलीगंज, मक़्बूलगंज, मौलवीगंज, गोलागंज और रस्तोगी मुहल्ला; मोतीमहल में जो असली और पुरानी इमारत है, वह भी नव्वाब सआदत अली ख़ाँ ही की बनवाई हुई है। यह इमारत, मौजूदा इहाता मोतीमहल में शिमाल[2] की तरफ़ वाक़ै है। इसमें निहायत ही सफ़ेद गुंबद था जिसमें कारीगर ने मोती की सी आब-व-ताब पैदा कर दी थी।

सआदत अली ख़ाँ अवध के तमाम फ़रमाँ-रवाओं से ज़ियादः बेदार-मग़्ज़[3] व मुदब्बिर[4] और इसके साथ ही निहायत ही किफ़ायत-शआर, जुज़रस बल्कि बख़ील[5] ख़याल किये जाते हैं। मुल्क का इन्तज़ाम इन्होंने ग़ैरमामूली होशियारी और ख़ूबी व शाइस्तगी[6] से किया और इसमें ज़रा भी शक नहीं कि अगर इनको आख़िर अहद तक पूरा इतमीनान नसीब हो जाता तो तमाम गुज़श्तः बदनज़्मियाँ[7] और ख़राबियाँ दूर हो जातीं और वह मुल्क की पूरी-पूरी इस्लाह कर ले जाते। लेकिन ख़राबी यह हुई कि ईस्टइंडिया कंपनी के साथ इनके तअल्लुक़ात अच्छे नहीं रहे। यहाँ तक कि बाज़-औक़ात उनका दिल ताज व तख़्त और फ़रमाँ-रवाई व जहाँबानी से खट्टा हो गया था। इन्हीं बातों से आजिज़ आकर इन्होंने आधे से ज़ियादः मुल्क सरकारे-अज़मतमदारे बरतानिया के सुपुर्द कर दिया और समझे कि अब मैं अपने मक़्बूज़ा[8] इलाक़े में बेख़रख़शः[9] व बेतरद्दुद[10] हुकूमत कर सकूँगा। मगर अफ़सोस कि अब भी उनको इत्मीनान और चैन न नसीब हुआ। जो मुल्क उनके क़ब्ज़े में छोड़ा गया था, उसमें भी जा-ब-जा अंग्रेज़ी फ़ौज के कैम्प क़ायम किये गये और बड़ी मिक़्दार, ख़ास लखनऊ और उसके हवाली[11] में मुक़ीम हुई, जिसकी सँभाल दुश्वार थी और

---

१ प्रतिष्ठित २ उत्तर दिशा ३ जागृत-मस्तिष्क ४ परामर्शदाता ५ कृपण, कंजूस ६ शिष्टता, भलमनसी ७ अव्यवस्था ८ अधिकृत ९ बिना झंझट १० बेखटके ११ आसपास के स्थान।

उसकी तादाद के ज़ियादः होने से सल्तनत पर सख़्त बार पड़ गया था। इसके मुक़ाबिल इन्हें अपनी बहुत सी फ़ौज घटा देनी पड़ी।

मगर बावजूद इन अफ़्कार[1] व तरद्दुदात[2] के इन्होंने जो जो इस्लाहें[3] कीं, बहुत कुछ क़ाबिले तारीफ़ हैं। मगर सबसे अजीब बात यह है कि बाज़ारों की तरक़्क़ी और तिजारत के फ़रोग़[4] के साथ, उनके दरबार में बाकमालों और क़ाबिले क़दर लोगों का इतना बड़ा मजमा हो गया था कि उस वक़्त हिन्दोस्तान के और किसी दरबार में ऐसे साहिबाने कमाल न नज़र आ सकते थे। ऐसे लोग अक्सर उसी जगह जमा हुआ करते हैं जहाँ के रईस मामूल से ज़ियादः फ़ैयाज़ी ज़ाहिर करते हों। सआदत अली ख़ाँ जैसा कि हम बयान कर चुके हैं, जुज़रस और बख़ील थे, मगर इस बुख़्ल[5] व किफ़ायत-शआरी के साथ यह सिफ़त[6] थी कि उनकी ज़ाती[7] क़ाबिलीयत, दूसरे बाकमालों की लियाक़त का एतिराफ़[8] करने पर मजबूर हो जाती थी। और इसी बात ने उनके हाथों से लायक़ लोगों की बड़ी-बड़ी क़दरें कराईं और लखनऊ पहले से ज़ियादः अह्ले-कमाल का मर्जअ बन गया। जो क़ाबिल आदमी जहाँ होता, सआदत अली ख़ाँ की क़द्रदानी की शुहरत सुनते ही अपने वतन को ख़ैर बाद कहकर लखनऊ का रुख़ करता और यहाँ आकर ऐसा आराम पाता कि फिर कभी वतन का नाम न लेता।

सन् १२४३ मुहम्मदी (सन् १८१४ ई०) में नव्वाब सआदत अली ख़ाँ ने सफ़रे आख़िरत किया और उनके बेटे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर मसनदे हुकूमत पर रौनक़-अफ़रोज़ हुए। क़ैसरबाग़ की मुरब्बअ[9] इमारत के अन्दर नव्वाब सआदत अली ख़ाँ और उनकी बीवी मुर्शिदज़ादी के मक़बरे हैं। इन दोनों मक़बरों की जगह एक मकान था जिसमें नव्वाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ऐयामे-वली-अहदी में रहा करते थे। बाप की आँखें बंद होते ही जब वह ऐवाने शहरयारी[10] में गये तो कहा—"मैंने वालिद का घर लिया तो ज़रूर है कि अपना मकान उन्हें रहने को दे दूँ।" इस ख़याल के मुताबिक़ मरहूम को अपने घर में दफ़्न कराया और पुराना मकान मुनहदिम[11] कराकर, यह मक़बरे तामीर करा दिये।

अब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के अहद में न बाप की सी बेदार-मग़ज़ी और दौलत की क़द्र थी और न अगले फ़रमाँ-रवाओं की सी फ़ौजी सरगरमी। हाँ, आसफ़उद्दौलः के अहद की सी आरामतलबी और ऐश-परस्ती ज़रूर थी। मगर इसमें यह फ़र्क़ आ गया था कि आसफ़उद्दौलः का इस्राफ़[12] भी मुल्क व मिल्लत की नफ़ा-रसानी के लिए होता था और अब ख़ालिस नफ़्स-परवरी थी।

---

१ फ़िक्र २ अंदेशा, खटका ३ सुधार ४ प्रगति ५ कृपणता ६ विशेषता ७ व्यक्तिगत ८ स्वीकृति ९ चौकोर १० राजप्रासाद ११ ढाया हुआ १२ धन का अपव्यय, फ़िज़ूलख़र्ची।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को बाप का जमा किया हुआ, करोड़ों रुपये का नक़द ख़ज़ाना मिल गया था, जो शाही शौक़ के पूरा होने में निहायत ही दरियादिली से उड़ने लगा। मोतीमहल में हम कह आये हैं कि शिमाली[1] जानिब सआदत अली ख़ाँ ने एक कोठी तामीर कराई थी। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने उस अहाते में दो और कोठियाँ तामीर कराईं, जिनके नाम 'मुबारक-मंज़िल' और 'शाह-मंज़िल' क़रार दिये गये। शाह-मंज़िल के पास ही किश्तियों का एक पुल था और मुबारक-मंज़िल इससे मशरिक़[2] की तरफ़ हटी हुई थी। शाह-मंज़िल के मुहाज़ी[3] दरिया पार रमना था जो हज़ारीबाग़ के नाम से मौसूम[4] था और इसमें मीलों तक नुज़्हतबख़्श[5] सब्ज़ाज़ार[6] चला गया था। इसमें अक्सर मस्त हाथी, गैंडे, और वहशी दरिन्दे लड़ाये जाते और बादशाह, इस पार शाहमंज़िल के कोठे पर जल्वःफ़रमाँ होकर इनकी लड़ाई का तमाशा मुलाहज़ा फ़रमाते। शेरों की लड़ाई भी वहीं होती, जिसके लिए मज़बूत कटहरे और एक उम्दः सर्कस बना हुआ था। मगर जो छोटे ग़ैर-आज़ार-रसाँ[7] जानवर लड़ाये जाते, उनकी लड़ाई ख़ास शाहमंज़िल के अहाते में इसी पार होती।

यह दरिन्दों और वहशी जानवरों का शौक़, हिन्दोस्तान में यहाँ से पहले और कहीं नहीं सुना गया। मालूम होता है कि रेज़ीडेण्टों और दरबार-रस अहले-योरुप से रूमियों के एमफ़ी थियेटर के हालात सुनकर, जहाँपनाह के दिल में शौक़ पैदा हुआ। मगर मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ साहब शेरवानी के तवज्जुः दिलाने से हमें मालूम हुआ कि दरिन्दों की लड़ाई का रवाज दौलते मुग़लिया के अहद से है।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने अपनी एक योरोपियन बीवी के लिए विलायती महल बनवाया और इसका नाम 'वलायती-बाग़' क़रार दिया। वहाँ से क़रीब ही 'क़दम-रसूल' की इमारत तैयार कराई। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की आरज़ू के मुवाफ़िक़, दरबारे अंग्रेज़ी से इन्हें बादशाही का लक़ब[8] अता किया गया। इससे पेश्तर फ़र्मा-रवायाने अवध, वज़ीर के रुतबे के समझे जाते और सिवा नव्वाब के और किसी एज़ाज़ी[9] लक़ब से नहीं याद किये जाते थे। उस ज़माने तक हिन्दोस्तान में शहनशाही मुग़लिया की इतनी आन बाक़ी थी कि अगरचिः मुल्क, ख़ुद-मुख़्तार व ख़ुदसर हुक्मरानों में बँट गया था और शहनशाहे देहली के क़ब्ज़े में सिर्फ़ देहली के गिर्द-व-पेश की ज़मीन बाक़ी रह गई थी, लेकिन इस बे-बिज़ाअती[10] पर भी शहनशाह व जहाँपनाह वही थे। न सरीर-आरायाने[11] देहली के सिवा हिन्दोस्तान में किसी को "बादशाह" कहलाने का हक़ था और न ख़िताब व इज़्ज़त देने का। उनके इस ग़ुरूर को तोड़ने के लिए ईस्ट-इंडियां कंपनी ने ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को, जिन्होंने बाप के अन्दोख़्ते[12] में से बहुत सा रुपया

---

१ उत्तर का २ पूर्व ३ सामने वाला भाग ४ नामधारी ५ आनन्ददायक ६ हरियाली ७ कष्ट न देने वाले ८ उपाधि ९ आदरणीय १० पूँजी ११ राज-सिंहासन की शोभा बढ़ाने वाले १२ छोड़ी हुई सम्पत्ति।

अंग्रेज़ों को क़र्ज़ दे दिया था, शाही का ख़िताब दिया और दरबारे अवध ने इस इज़्ज़त व सरफ़राज़ी[1] को निहायत ही क़द्र की निगाह से देखा। चुनाँचि: उस वक़्त से हुक्मरानाने अवध जो रेज़ीडेण्टों के हाथों के खिलौने थे, बादशाह बन गये और आख़िरी फ़रमाँ-रवा वाजिद अली शाह के मरने तक उनका सरमायएनाज़ रहे।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने इसी ख़िताबे-शाही की यादगार में दरिया पार मच्छी-भवन के सामने एक नया बाज़ार बसाया और इसका नाम बादशाहगंज रक्खा। इसी ज़माने में हकीम महदी ने महदीगंज आबाद किया और नायबुस्सल्तनत[2] आग़ामीर की शाहाना इमारत के दूर तक फैल जाने की वजह से ऐन-वस्ते शहर में मुहल्ला आग़ामीर की डेवढ़ी क़ायम हुआ और उसी अहद में आग़ामीर की सराय तामीर हुई।

बादशाह को और उनसे ज़ियाद: बादशाह बेगम को मज़हबी मुआमलात में बहुत ज़ियाद: इनहिमाक[3] था। सफ़विय्या ख़ानदान के ज़माने से ईरान का मज़हब शीआ-असना-अशरी था। मगर हिन्दोस्तान के आम मुसलमान सुन्नी थे। नव्वाब बुरहानुल्-मुल्क चूँकि विलायत से नये आये थे इसलिए उनका और उनके सारे ख़ानदान का मज़हब शीआ था। बा-वजूद इसके ज़माने तक लखनऊ में हुकूमत का वही क़दीम तरीक़ा चला आता था जो आग़ाज़े[4]-सल्तनते इस्लाम से दीगर बिलादे-हिन्द[5] और सारे मुल्क का था। मगर इस वक़्त से बादशाह और उनके ख़ास महल के इनहिमाके मज़हबी की वजह से शीआयत, हुकूमते लखनऊ का एक नुमायाँ उन्सर[6] बन गई। फ़िरंगी-महल के उलमा की तरफ़ से हुक्मरानों की तवज्जुह हट गई और ख़ानदाने इजतिहाद[7] उरूज[8] पाकर सल्तनत का अस्ली मुक़न्निन[9] क़रार पाया। लेकिन शीआ मज़हब अपनी अस्ली हालत पर क़ायम रहता तो चन्दाँ मुज़ायक़ा न था, ख़राबी यह हुई कि बादशाह बेगम की ज़ाहिलाना और अमीराना मज़हबी सरगरमी ने मज़हब शीआ में नई-नई बिदअतें[10] ईजाद कीं जिनकी वजह से इसी क़दर नहीं हुआ कि बादशाहों और अमीरों में तरह-तरह की तिफ्लान[11]-मिज़ाजियाँ पैदा हुईं। बल्कि लखनऊ की शीआयत सारी दुनिया की शीआयत से नई-निराली और अजीब हो गई।

सबसे पहले बेगम साहिबा ने इमामे साहिबुल्-अस्र की छटी की रस्म क़रार दी, जिसमें अगर यह होता कि किसी महफ़िल में इमामे मम्दूह के हालात बयान करके सवाब हासिल कर लिया जाये, तो मुज़ायक़ा न था। मगर नहीं, यहाँ हिन्दुओं के जन्म-अष्टमी के रसूम के मुवाफ़िक पूरा ज़चाख़ाना मुरत्तब किया जाता। इसके बाद यह तरक़्क़ी हुई कि सहीहुन्नसब[12] सैयदों की ख़ूबसूरत लड़कियाँ लेकर अम्म:असना-अशर[13] की बीवियाँ क़रार दी गईं जिनका नाम 'अछूतियाँ' रखा गया। और जब वह इमामों

---

१ माननीयता, मान्यता २ उपराज्याधिकारी ३ दिलचस्पी ४ आरम्भ ५ हिन्दोस्तान के राज्य समूह ६ मूल तत्व ७ नई बात ८ विकास ९ जगह १० अनीति ११ बचपना।

की बीवियाँ थीं तो फिर उनके यहाँ इमामों की विलादत[1] भी होती और बारहों इमामों की विलादत की तक़रीबें बड़े कर्र वफ़र[2] के साथ मनाई जाने लगीं।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर निहायत ही ग़ज़बनाक और आशुफ़्ता-मिज़ाज[3] बादशाह थे, और रोब-दाब इस बला का था कि उनके ज़माने में अंग्रेज़ों से तअल्लुक़ात तो अच्छे रहे मगर आग़ामीर जो वज़ीरुस्सल्तनत[4] था दरबार पर इस क़दर हावी था कि ख़ुद बादशाह बेगम और वली अहदे सल्तनत तक उसके आज़ार से महफ़ूज़ न रह सके। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर उसे घूंसों और लातों से मारते। जिस मार को वह ख़ुशी से खा लेता, मगर उसका बदला दीगर मुअज़्ज़िज़ीने[5] दरबार और अइज़्ज़ाय[6] शाही तक से ले लिया करता।

इससे पहले बादशाहे अवध ने मज़हबी इरादत[7] व अक़ीदत[8] से दरिया किनारे और मोतीमहल के मुत्तसिल[9] बख़्फ़े अशरफ़ यानी रौज़ेः मुतह्-हरा हज़रत अली की नक़ल लखनऊ में बनवाई और इसकी रौशनी व ख़िदमत के लिए बहुत सा रुपया सरकारे अंग्रेज़ी के हवाले किया, जिसकी बदौलत आज तक वह बा-रौनक़ और ख़ूब आबाद है और सन् १२५६ मुहम्मदी (सन् १८२७ ई०) में जब उनका इन्तक़ाल हुआ तो उसी में दफ़न हुए।

अवध अंग्रेज़ों के चंगुल में

सन् १२५६ मुहम्मदी (सन् १८२७ ई०) में ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के बेटे नसीरउद्दीन हैदर तख़्त पर बैठे। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के ज़माने से, जैसा कि हम बता चुके हैं, फ़र्मा-रवायाने अवध नव्वाब नहीं बादशाह थे। इस दौलत का आग़ाज़ वज़ारते देहली के दरजे से हुआ था और अगले ज़बरदस्त व ज़ी-वक़अत फ़र्मा-रवा सब नव्वाब वज़ीर कहलाते थे। लेकिन अब जबकि अस्ली हुकूमत व सतवत[10] रुख़सत हो चुकी थी और हिन्दोस्तान के पॉलीटिक्स में उन लोगों का बिलकुल असर नहीं बाक़ी रहा था, यह बादशाह बन गये।

ख़याल किया जा सकता है कि अंग्रेज़ों ने हुक्मरानाने अवध को बादशाही इज़्ज़त दी तो अपनी पुश्त-पनाही से उनकी सतवत भी बढ़ा दी होगी और इन्हें नाम ही का बादशाह नहीं, बल्कि हक़ीक़तन् बादशाह बनाकर दिखा दिया होगा। लेकिन नहीं, हमें यह नज़र आता है कि इस अहद में अवध के बाहर इन लोगों का असर तो बिलकुल था ही नहीं, ख़ुद अपनी क़लम-रौ में भी यह इतने आज़ाद न थे जितने कि उनके मा-सबक़[11] बुज़ुर्ग होते आये थे। अब किसी की तख़्त-नशीनी बग़ैर अंग्रेज़ों की मंज़ूरी

---

१ जन्म-दिवस २ शान-शौकत ३ बेचैन-दिल ४ प्रधानमंत्री ५ प्रतिष्ठित ६ इज़्ज़तदार ७ विचार ८ धार्मिक विश्वास ९ सम्बद्ध १० सत्ता ११ पूर्वज।

के हो ही न सकती थी। अंग्रेज़ी फ़ौज सारी क़लम-रौ में जा-बजा फैली हुई थी। कोई अहम मुआमला (मामला) बग़ैर साहब रेज़ीडेण्ट की दख़लदिही के तय ही न हो सकता था। सरीरे शहरयारी एक स्टेज था, जिस पर जो कुछ होता, बज़ाहिर नज़र आता कि एक्टर कर रहे हैं। मगर अस्ल में वह अफ़आल किसी और शख़्स के क़ब्ज़ए क़ुदरत में थे जो परदे की आड़ में था और जो चाहता था करता था।

मगर ख़ुदा की इतनी मिह्रबानी थी कि इन पिछले हुक्मरानाने अवध की और इनके साथ क़रीब-क़रीब सारे वाबस्तगाने[1] दामने दौलत की हिस[2] मफ़क़ूद[3] हो गई थी, जिसकी बदौलत वह अपनी कमज़ोरी व बे-दस्तो पाई[4] को बिलकुल महसूस न कर सकते थे। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर बादशाह बनते ही ऐश-व-इशरत में मश्ग़ूल हो गये और नसीरउद्दीन हैदर को तो तख़्तेशाही वरसे में मिला था। नव्वाब सआदत अली ख़ाँ का जमा किया हुआ रुपया, ऐश-परस्ती में दोनों का मुमिद[5] व मुआविन[6] हुआ। कुछ अंग्रेज़ों को क़र्ज़ दिया गया, कुछ उन बतदअ:[7] मज़हबी रस्मों की बजा आवरी[8] में सर्फ़ हुआ, जिन्हें बादशाह और इनकी मलकाओं ने अपने मज़ाक़ के मुवाफ़िक़ ज़ौक़ व शौक़ से ईजाद किया; और बाक़ी फ़िज़ूल ख़र्चों और ऐयाशियों की नज़र होने लगा। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने तो इतना भी किया था कि वक़्फ़े-अश्रफ़ की नक़ल बनवाकर अपनी क़ब्र का ठिकाना कर लिया और बग़ैर इसके कि अपने वरसे पर भरोसा करें, कुछ रुपया अंग्रेज़ों के हवाले किया कि इसके सूद से पूरे दीनी आदाब के साथ नजफ़ की दाश्त किया करें। चुनाँचि: आज तक उनकी क़ब्र पर चिराग़ रौशन होता है, मजलिसें होती हैं, क़ुर्आन-ख़्वानी होती है और मुहर्रम में ख़ूब रौशनी होती है, जिसके तुफ़ैल थोड़े से ग़रीबों की परवरिश हो जाया करती है। मगर नसीरउद्दीन हैदर को हुज़ूमे ऐश में इतनी भी तौफ़ीक़ न हुई। दरिया पार मुहल्ला इरादत नगर में इन्होंने एक करबला बनवाई जो ख़ुद उनका मरक़द[9] क़रार पाने वाली थी। मगर इसकी ख़िदमत व दाश्त की ज़रा भी फ़िक्र नहीं की; जिसका नतीजा यह है कि आज वह डालीगंज के स्टेशन के पास उजाड़ और ख़ामोश पड़ी है और शायद कोई चिराग़ जलाने वाला भी नहीं। उनके ज़माने में नए मुहल्ले गनेशगंज और चाँदगंज वहीं दरिया पार आबाद हुए।

नसीर-उद्दीन हैदर को नजूम से अक़ीदत थी, जिसने इल्मे-हयात की तरफ़ तवज्जु: दिलाई और इरादा किया कि अपने शहर में एक आला दरजे की रसद-गाह[10] क़ायम करें। चुनाँचि: इसी ग़रज़ के लिए एक कोठी नव्वाब सआदत अली ख़ाँ के मक़बरे और मोतीमहल के दरमियान में तामीर कराई जो रसद-गाह होने के बाअस, लखनऊ

---

१ रिश्तेदार २ शक्ति, कुव्वत ३ गुम, जिसका कुछ पता न लगे ४ लाचारी, असहायता ५ सहायक ६ मददगार ७ अभीष्ट सिद्ध करने वाली ८ पालन में ९ समाधि, क़ब्र १० वेधशाला।

में तारेवाली कोठी के नाम से मशहूर हुई। इसमें बड़ी-बड़ी दूरबीनें और आला दरजे के आलाते-रसद[1] जमा किये गये। उनके मुनासिब तौर पर क़ायम करने का काम और उनका इन्तज़ाम व इहतिमाम कर्नल विल्काक्स के सिपुर्द हुआ जो एक अच्छे हैयत-दाँ[2] थे, मगर लखनऊ की यह रसदगाह गोया कर्नल साहब मौसूफ़ ही की ज़िन्दगी का एक मज़्हूलुल्-हाल[3] वाक़िअः थी। क्योंकि सन् १२५६ मुहम्मदी से नसीरउद्दीन हैदर की सल्तनत का आग़ाज़ हुआ, जिसके चार-पाँच साल बाद ग़ालिबन् यह रसदगाह क़ायम हुई होगी और उस वक़्त से सन् १२७६ मुहम्मदी (सन् १८४७ ई०) तक जबकि आख़िरी ताजदारे अवध वाजिद अली शाह का ज़माना था, यह रसद-गाह इन्हीं के इहतिमाम में रही। सन् मज़्कूर में कर्नल साहब का इन्तिक़ाल हुआ और उनकी जगह कोई हैयत-दाँ इस ख़िदमत पर मुक़र्रर नहीं किया गया।

वाजिद अली शाह ने इसकी तरफ़ से बेपरवाही की। लखनऊ के बाज़ मुस्तनद[4] अश्ख़ास की ज़बानी सुना गया कि इसकी सबसे बड़ी दूरबीन को वाजिद अली शाह ने एक खिलौना ख़याल करके, हैदरी तवायफ़ के हवाले कर दिया था। लेकिन गज़ेटियर से मालूम होता है कि यह रसद-गाह इंतिज़ाए-सल्तनत[5] के ज़माने तक क़ायम थी। ग़दर में ग़ालिबन् बलवाइयों उसे तबाह कर दिया, क्योंकि अहमद-उल्लाह-शाह ने (जो डंकाशाह भी कहलाते थे और अंग्रेज़ी फ़ौज से बड़ी मुस्तैदी व गरमजोशी के साथ लड़े थे) तारे वाली कोठी ही में सुकूनत इख़्तियार की थी। इसी में अपना दरबार क़ायम किया था और बाग़ी फ़ौजों के अफ़सर यहीं जमा होकर मश्विरे किया करते थे।

उसी ज़माने में रौशनउद्दौलः ने, जो वज़ीरे सल्तनत थे अपनी ख़ूबसूरत और शानदार कोठी तामीर कराई, जिसमें फ़िल्हाल डिप्टी कमिश्नर बहादुर इजलास करते। इसलिए कि वाजिद अली शाह ने इस कोठी को क़ैसरबाग़ बनवाते वक़्त ज़ब्त कर लिया था और जब मुल्क अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में आया है, यह कोठी एक सरकारी जायदाद थी।

नसीरउद्दीन हैदर का ज़माना, सच यह है कि निहायत ही ख़तरनाक ज़माना था। एक तरफ़ तो इन्तिज़ामे मम्लुकत की ख़राबी थी। बादशाह को ऐश व इशरत और ईजादकर्दः दीनदारी की रस्मों से फ़ुर्सत न मिलती थी। सारा इन्तिज़ामे सलतनत वज़ीर पर छोड़ा झाता था और वज़ीरों की यह हालत थी कि कोई ऐसा शख़्स मिलता ही न था जो नेकनीयती और ख़ुशतद्बीरी से काम चला सके। हकीम मेंहदी बुलाये गये; वह मुन्तज़िम तो आला दरजे के थे, मगर चाहते थे कि सलतनत को अपनी ही मीरास बना लें। रौशनउद्दौलः वज़ीर हुए; उनमें न माद्दः था न तबीअतदारी।

---

१ नक्षत्रों की गति आदि देखने के यन्त्र २ ज्योतिष जानने वाले ३ प्रमाणित ४ जिसका सर-पैर किसी को न मालूम हो ५ राज्य के उथल-पुथल, विप्लव।

अहादीस

२६६[1] घरवालों पर ख़र्च करने का अज्र सबसे ज़ियादः है

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, एक दीनार तुमने अल्लाह के रास्ते में ख़र्च किया। एक दीनार गर्दन आज़ाद करने में, एक दीनार मिस्कीनों[1] पर सदक़ा किया, और एक दीनार घरवालों पर ख़र्च किया। सो जो दीनार घरवालों पर ख़र्च किया उसका दर्जः सबसे ज़ियादः है। [मुस्लिम]

हज़्रत सौबान मौला से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अफ़्ज़लतरीन[2] वह दीनार है जिसको आदमी अपने घरवालों पर ख़र्च करे, और उन जानवरों पर ख़र्च किया जाये जो अल्लाह के रास्ते में काम आयें और वह दीनार जो अल्लाह के रास्ते में अपने साथियों पर ख़र्च किया जाये।

२६७[2] औलाद पर ख़र्च करने का सवाब

हज़्रत उम्मेसलमः (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अर्ज़ किया या रसूलल्लाह! क्या मेरी वह औलाद जो पहले शौहर से हैं उनपर ख़र्च करने में अज्र है। मैं उनको बुरी हालत में छोड़ना नहीं चाहती और वह मेरी ही तो औलाद हैं। आपने फ़रमाया, हाँ, जो कुछ भी तुम ख़र्च करोगी तुम्हें अज्र मिलेगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२६८[3] बीवी को खिलाने का सवाब

हज़्रत सअ़द (र०) बिन अबी वक़्क़ास से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह की ख़ुशी चाहते हुए जो कुछ भी ख़र्च करोगे अल्लाह उसका अज्र देगा चाहे अपनी बीवी के मुँह में एक लुक़मा रक्खो। [बु०-मु०]

२६९[4] घरवालों पर सवाब की नीयत से ख़र्च करना

हज़्रत अबू मस्ऊ़द (र०) अल्बदरी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मर्द अपने घरवालों पर अज्र तलब करते हुए ख़र्च करे तो यह सदक़ा है। [बु०-मु०]

---

१ दीन असहाय २ सर्वश्रेष्ठ।

२७० अपने मुतअ़ल्लिक़ीन[1] की मदद न करना बड़ा गुनाह है

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) बिन अम्र बिन अलआ़स से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, इन्सान का गुनाह यही काफ़ी है कि जिसका कफ़ील[2] हो उसकी किफ़ालत[3] से हाथ उठा ले। [अबूदावूद-मुस्लिम]

२७१ ख़र्च करनेवाले के लिए निअ़मुल्-बदल की दुआ

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स़०) ने फ़रमाया, हर रोज़ दो फ़िरिश्ते उतरते हैं। एक कहता है कि ऐ अल्लाह! ख़र्च करनेवाले को निअ़मुल्-बदल अ़ता फ़रमा। दूसरा कहता है ऐ अल्लाह! बख़ीलों[4] को नुक़सान और तबाही दे।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

२७२ मुतअ़ल्लिक़ीन से इब्तिदा

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स़०) ने फ़रमाया, ऊँचा हाथ नीचे हाथ से बेहतर है। और ख़र्च की इब्तिदा उन लोगों से करो जिनकी तुम परवरिश करते हो और बेहतरीन सदक़ा वह है जो कुछ दौलत बचाकर किया जाये। और जो मुहतात[5] रहना चाहेगा अल्लाह उसको मुहतात रक्खेगा। जो इस्तग़ना[6] चाहेगा अल्लाह उसको ग़नी करेगा। [बुख़ारी]

महबूब चीज़ का ख़र्च करना

आयत

लन्तनालुल्बिर्रहत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बून ۵…

उस वक़्त तक नेकी को न पहुँचोगे जब तक कोई महबूब चीज़ ख़र्च न करो। [सू० आलि अिम्रान, रु० ९ आ० ९२]

या अय्युहल्लज़ीन आमनू अन्फ़िक़ू मिन् तय्यिबाति मा कसब्तुम् व मिम्मा अख़्रज्ना लकुम्मिनल्-अर्ज़ व ला तयम्ममुल्ख़बीस मिन्हु तुन्फ़िक़ून… (२६७)

---

१ सम्बन्धियों २ उत्तरदायी अथवा पालन-पोषण का ज़िम्मेदार ३ परवरिश ४ कंजूसों ५ सतर्क, सावधान ६ निस्पृहता।

ऐ ईमानवालो ! उन पाक चीज़ों को ख़र्च करो जो तुमने कमाई हैं। और जो हमने तुम्हारे लिए ज़मीन से निकाली हैं। ख़ास तौर से ख़राब ही चीज़ न ख़र्च करो। [सू० बक़र, रु० ३७ आ० २६७]

अहादीस

३७३ एक सहाबी का सबसे ज़ियादः पसन्दीदह माल राहे ख़ुदा में देना

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि अन्सार में अबू तलहः (र०) सबसे ज़ियादः मालदार थे और उनके माल में उनको बैरुहा बहुत पसन्द था और वह मस्जिद के सामने था। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अक्सर उसमें तशरीफ़ ले जाते और उसका पानी पीते जो बहुत शीरीं था। हज़्रत अनस (र०) कहते हैं कि जब यह आयत उतरी 'लन्तनालुल्बिर्र हत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बून' तो हज़्रत अबू तलहा (र०) रसूलुल्लाह (स०) के पास आये और कहा या रसूलल्लाह ! आप पर अल्लाह तआला ने यह आयत उतारी है। 'लन्तनालुल्बिर्र हत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बून'। और मुझे अपने माल बैरुहा बहुत मर्ग़ूब[1] है। मैं उसको अल्लाह के लिए सदक़ा करता हूँ और उसके ज़ख़ीरः और नेकी की उम्मीद अल्लाह से रखता हूँ। पस आप उसको जहाँ अल्लाह का हुक्म हो वक़्फ़ कर दीजिए। आपने फ़रमाया, ओहो यह माल तो बहुत नफ़ा का है। यह माल तो बहुत नफ़ा का है। जो कुछ तुमने कहा मैंने सुना, मेरी राय यह है कि इसको अपने क़राबतदारों[2] के लिए वक़्फ़ कर दो। हज़्रत अबू तलहः (र०) ने अर्ज़ किया या रसूलल्लाह जो आपकी मर्ज़ी हो। फिर उसको हज़्रत अबू तलहः (र०) ने अपने चचाज़ाद भाइयों में तक़सीम कर दिया।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

अपने घरवालों को नेकी का हुक्म

आयात

वअ्मुर् अह्लक बिस्सलाति वस्तबिर् अलैहा ...

अपने घरवालों को नेकी का हुक्म दो और उस पर क़ायम रहो।

[सू० ताहा, रु० ८ आ० १३२]

---

१ प्रिय २ समीपी जन।

या अय्युहल्लज़ीन आमनू क़ू अन्फ़ुसकुम् व अह्लीकुम् नारन्…

ऐ ईमानवालो, अपनी जानों को और अपने घरवालों को आग से बचाओ। [सू० तह़रीम, रु० १ आ० ६]

अह़ादीस

३७४ छोटे बच्चे की निगरानी और इहतियात

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि हसन (र०) बिन अली (र०) ने एक खजूर उठा लिया और अपने मुँह में रख लिया, आपने फ़रमाया अरे अरे इसको फेंको, क्या तुम नहीं जानते कि सदक़ः का माल हम नहीं खाते। [बुख़ारी-मुस्लिम]

और एक रिवायत में है, आपने फ़रमाया सदक़ा हमारे लिए जाईज़ नहीं†।

३७८ बच्चे को तरबियत[1] और आदाब[2] की तालीम

हज़्रत उमर (र०) बिन अबू सलमः (र०) से (जो उम्मे सलमः के साहबज़ादे थे और आँ हज़्रत (स०) की परवरिश में थे) रिवायत है कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की परवरिश में था और प्याले में इधर-उधर से खाया करता था। आपने मुझसे फ़रमाया ऐ लड़के, अल्लाह का नाम लेकर सीधे हाथ से खा और अपने सामने से खा। उसके बाद मैं उसी तरह खाने लगा। [बु०-मु०]

३७९ हर शख़्स अपने मुतअ़ल्लिक़ीन[3] का ज़िम्मेदार है और ख़ुदा के सामने जवाबदेः[4] है

हज़्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है, फ़रमाते थे तुम सब अपनी-अपनी जगह पर ज़िम्मेदार हो। ख़लीफ़ा ज़िम्मेदार है, उससे अपनी रईयत[5] के मुतअ़ल्लिक़ पूछा जायेगा। मर्द अपने घरवालों का ज़िम्मेदार है, उसके मुतअ़ल्लिक़ उससे पूछा जायेगा। औरत अपने शौहर के घर की

---

† यानी शफ़क़त[6] व मुहब्बत नहीं हैं कि बच्चे को अच्छा खिलाये, पहनाये। बड़ी मुहब्बत यह है कि नाजाईज़ मुश्तब्ह[7] चीज़ से बचाये।

---

१ सभ्यता २ शिष्टाचार ३ सम्बन्धियों ४ उत्तरदायी ५ प्रजा ६ ममता ७ सन्दिग्ध, अनिश्चित।

ज़िम्मेदार है, उसके बारे में पूछी जाये गी। ख़ादिम अपने आक़ा के माल का ज़िम्मेदार है, वह उसके मुतअ़ल्लिक़ पूछा जायेगा। तुम सब ज़िम्मेदार हो, अपनी रईयत के मुतअ़ल्लिक़ पूछे जाओगे।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

बच्चों को नमाज़ की ताकीद और तम्बीह

हज़्रत अम्र (र०) बिन शुएब से रिवायत है, वह अपने बाप से रिवायत करते हैं, वह अपने दादा से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम्हारी औलाद जब सात बरस की हो तो नमाज़ की ताकीद करो और जब दस बरस की हो तो मार कर नमाज़ पढ़ाओ‡ और उनके बिस्तर अलग कर दो। [अबूदावूद]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जब बच्चे सात बरस के हों तो नमाज़ की ताकीद करो और जब दस बरस के हों तो उनको मार-मार कर नमाज़ पर लगाओ। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

पड़ोसी का हक़

आयात

वऽबुदुल्लाह व ला तुश्रिकू बिहि शैअंव्व बिल्वालिदैनि अिह्सानंव्व बिज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि वल्जारिज़िल्-क़ुर्बा वल्-जारिल्जुनुबि वस्साहिबि बिल् जम्बि वब्निस्सबीलि व मा मलकत् अैमानुकुम्...

‡ इसमें मुसलमानों ने बड़ा तसाहुल[1] कर रक्खा है। तालीम की ख़ातिर मश्कूक[2] व आ़रिज़ी[3] कामयाबी के लालच में ज़द व कोब[4] ज़ज्र[5] व तौबीख़[6] सब रवा है। लेकिन नमाज़ के लिए इशारः करना भी गराँ है। बच्चा एक दिन मदरसा न जाये तो सख़्त बाज़-पुर्स[7] हो और नमाज़ फ़र्ज़ होने के बाद भी बर्सों नमाज़ न पढ़े तो पेशानी पर शिकन तक न आये। और कभी उसको टोका न जाये। अक्सर वालदैन नमाज़ पढ़ते हैं। लेकिन औलाद से नमाज़ के लिए कहना ज़रूरी नहीं समझते और उनके नमाज़ न पढ़ने पर कोई नाराज़गी और गरानी भी नहीं होती।

१ सुस्ती २ संदिग्ध ३ क्षणिक, अस्थायी ४ मार-कुटम्मस ५ डाँट-डपट ६ झिड़की ७ पूँछ-गछ।

अल्लाह की अ़िबादत करो और उसके साथ किसी को शरीक न करो और वालदैन के साथ भलाई करो और क़राबतदारों[1] के साथ और यतीमों और मिस्कीनों और क़रीब के पड़ोसी और दूर के पड़ोसी और रफ़ीक़ व शरीक ज़िन्दगी के साथ और मुसाफ़िरों के साथ और जिनके तुम मालिक हो। [सू० निसा, रु० ६ आ० ३६]

अह़ादीस

३७१ हज़्रत जिबरील की ताकीद

हज़्रत इब्नि उमर (र०) और हज़्रत आ़यशः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जिबरील (अ०) मुझे बराबर हमसाये[2] के बारे में वसिय्यत करते रहे। यहाँ तक कि मुझको ख़्याल हुआ कि कहीं इसको वारिस न बना दें।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

३७२ सालन ज़ियादः करके पड़ोसी की मदद

हज़्रत अबू ज़र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया ऐ अबू ज़र (र०) जब तुम कोई सालन पकाओ तो शोरबा ज़ियादः कर दिया करो। और अपने हमसाये का ख़्याल रक्खो। [मुस्लिम]

और एक रिवायत में है कि अबू ज़र (र०) ने कहा, मेरे महबूब मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझे वसिय्यत की कि जब मैं कोई सालन पकाऊँ तो शोरबा ज़ियादः कर दूँ फिर अपने हमसाये के घर की ख़बर लूँ[छ]।

३७३ ईमान की शर्त

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया ख़ुदा की क़सम वह मोमिन नहीं, ख़ुदा की क़सम उसमें ईमान नहीं, ख़ुदा की क़सम वह साहबे ईमान नहीं। लोगों ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह कौन? फ़रमाया जिसकी शरारतों से उसका पड़ोसी महफ़ूज न हो। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ समीपियों, सम्बन्धियों २ पड़ोसी।

छ क्या अख़्लाक की तालीम है। उससे बढ़कर क्या ग़म्ख़्वारी, हमदर्दी और इआ़नत हो सकती है।

और मुस्लिम की एक रिवायत में है कि जन्नत में वह न दाख़िल होगा जिसके शर[1] से हमसाया को अमन न हो।

३८६ किसी तुहफ़ः को हक़ीर न समझो

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मुसलमान औरतो ! पड़ोसन अपनी पड़ोसन के लिए किसी तुहफ़ः को हक़ीर[2] न समझे§। अगरचि बकरी का एक खुर ही क्यों न हो। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३८७ दीवार में लकड़ी गाड़ने से न रोकना चाहिए

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, पड़ोसी अपने पड़ोसी को दीवार में लकड़ी गाड़ने वग़ैरः से न रोके। फिर हज़्रत अबू हुरैरः (र०) ने कहा, क्या बात है कि तुम इससे एराज़ करते हो[3]। ख़ुदा की क़सम मैं तुम्हारे शानों के दर्मियान इसको फेंक दूँगा×। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३८८ हमसाये को तकलीफ़ न दे

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो (वह) अपने हमसाये को तकलीफ़ न दे। जिसका ईमान अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर हो वह अपने मेहमान की ख़ातिर करे। जो अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर ईमान लाये वह भली बात कहे वरना खामोश रहे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३८९ क़रीबतर पड़ोसी ज़ियादः मुस्तहक़ है

हज़्रत आयशः (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अर्ज़ किया या रसूलल्लाह ! मेरे दो पड़ोसी हैं। मैं किसको तुहफ़ा भेजूँ। आपने फ़रमाया जिसका दरवाज़ा तुमसे ज़ियादः क़रीब हो। [बुख़ारी]

---

§ बाज़ औक़ात बड़े और ख़ास तुहफ़ः के इहतिमाम[4] में बरसों गुज़र जाते हैं, और उसकी तौफ़ीक़ नहीं होती।

× यानी तुमको जिताकर कहूँगा और यह हुक्म पहुँचाऊँगा।

---

१ बदी, उपद्रव २ तुच्छ ३ विमुख होते हो ४ प्रबंध।

३९८ अल्लाह के नज़दीक अफ़ज़ल[1] कौन है

हज़्रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया अल्लाह के यहाँ वह लोग बेहतर हैं जो अपने साथियों के लिए बेहतर हैं। और अल्लाह के यहाँ वह पड़ोसी बेहतर है जो अपने पड़ोसी के लिए बेहतर है। [तिर्मिज़ी]

वालदैन के साथ सुलूक

आयात

वअ़्बुदुल्लाह व ला तुश्रिकू बिहि शैअंव्व बिल्वालिदैनि अिह्सानंव्व बिज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि वल्जारिज़िल्-क़ुर्बा वल्जारिल्जुनुबि वस्साहिबि बिल्जम्बि वब्निस्सबीलि ला व मा मलकत् अैमानुकुम् त...

अल्लाह की अ़िबादत करो और उस के साथ किसी को शरीक न करो और वालदैन के साथ इहसान करो और क़राबतदारों, यतीमों, मिस्कीनों और क़रीब के पड़ोसी और दूर के पड़ोसी और रफ़ीक़ व शरीक-ज़िन्दगी और मुसाफ़िरों के साथ और जिनके तुम मालिक हो।

[सू० निसा, रु० ६ आ० ३६]

...वत्तक़ुल्लाहल्लज़ी तसा'अलून बिहि वल्अर्हाम त...

अल्लाह से डरो जिसके नाम का वास्ता देते हो और रिश्तों का लिहाज़ रक्खो। [सू० निसा, रु० १ आ० १]

...वल्लज़ीन यसिलून मा' अमरल्लाहु बिहि अँय्यूसल व यख़्शौन रब्बहुम् व यख़ाफ़ून सू'अल्हिसाबि त

जो लोग जोड़ते हैं जिसके जोड़ने का अल्लाह ने हुक्म दिया और अपने परवरदिगार से और हिसाब की बुराई से डरते हैं।

[सू० रअ़्द, रु० ३ आ० २१]

---

१ श्रेष्ठ।

"तुझसे यह चित्रांकन नहीं बनता; ले, मैं यह बहुत अच्छी तरह से लिख दूँ", आदि कहती हुई किसी विवेक-वती सखी ने बलात् तूलिका को दूसरी सखी से छीनकर सीता के गण्ड-स्थलों में मकरियों के चित्र अंकित कर दिये। तिस पर किसी सखी ने उनकी ठोड़ी पर कस्तूरी की एक बिन्दी अंकित कर दी। उसी बिन्दी को देख कर प्रतीत हुआ, मानो संगभ्रष्ट हो एक मधुमक्खी निश्चलरूप से वहाँ बैठी हुई हो। (११)

गोळे—वाद-विवाद में; कपोळे—गण्डस्थलों में, गालों पर; चिबुके—ठुड्डी पर; स्थकित—ठहर गई। (११)

बड़ीश सारणी लक्ष्य से नेत्र। बिलम्बित कले अञ्जन सूत्र।
बाहारि पक्ष्म-पेड़ारु पळाइ। बिळ-श्रोत्रे कि दम्भ-दंश अहि से।
विषे कि न जाणि तत्तु य़े।
विकाश मीनराशि बेनि पारुशे हेला बेनि धूमकेतु य़े। १२।

सरलार्थ—अनन्तर सीताजी के नेत्रों में कज्जल देने पर उनकी शोभा सूत्रयुक्त वंसी व लट्टू की-सी प्रतिभात हुई। फिर उस कज्जल की प्रत्येक पूँछ को देखकर प्रतीत होता है, मानो धैर्य-विनाशक कृष्ण सर्प वरौनी रूपी पिटारी से निकल कर कर्ण-विवर में प्रवेश करने जा रहा हो। अथवा नेत्रोंरूपी मीनराशि के दोनों तरफ दो धूमकेतु एक ही समय में उदित हुए हों। इस विषय में कौन-सा तत्त्व है, मालूम नहीं पड़ता। (१२)

बड़शी—बनसी, मछली फँसाने का कंटिया; सारणी—लट्टू; अञ्जनसूत्र—कज्जल की रेखा; पक्ष्मपेड़ा—बरौनीरूपी पिटारी; पळाइ—भाग रहा है; विळ-श्रोत्रे—कान रूपी विवर में; दम्भ-दंश अहि—धैर्य-दंशक सर्प, धीरज का नाश करने वाला साँप (उत्प्रेक्षा)। (१२)

वितरणरे मोति चापसरि। वितर्क तहिँरे बेगे प्रसरि।
बाञ्छि तण्डुळवत पारावत। बन्दी हेला परा पाशरे सत से।
बहुळ माळिकि रञ्जि य़े।
वर्ण्णना अछि शंख बोलि य़ाहाकु के ताहा पारिब भाञ्जि य़े। १३।

सरलार्थ—सखियों ने सीताजी के कण्ठ में मोती की चिलमीलिका पहनाई। उसे देख कविवर उत्प्रेक्षा कर रहे हैं, मानो कण्ठरूपी कबूतर मोतियों को चावल समझ कर उन्हें खाने जाकर मालारूपी फाँस से बन्दी हुआ हो। फिर उस कण्ठ ने बहुत प्रकार की रत्न-मालाओं को शोभित किया। (सुन्दर अंग आभूषणों से स्वयं भूषित होने के बजाय उन्हीं को भूषित

करता है।) फिर बहुत मालाओं से रंजित कण्ठ को शंख के रूप में वर्णित किया गया है, उसे कौन अन्यथा कर सकता है? (कोई नहीं।) शंख बहुत मालियों को रंजित करता है। यह कण्ठ-शंख बहुत मालाओं को रंजित करता है। (१३)

वितरणरे—देने में; चापसरी—चिलमीलिका, एक प्रकार का कण्ठहार; तहिँकि—उसमें; वाञ्छि—समझकर, सोचकर; तण्डुलवत—चावलकी तरह; पारावत—कबूतर; के—कौन; ताहा—वह, उसे; भाञ्जि पारिब—तोड़ सकता, अन्यथा कर सकता (उपमा) विशेषः—कण्ठ की तुलना साधारणतया कपोत या शंख से की जाती है। (१३)

व्यवस्था कले बाहुदण्ड विधि। विनत स्कन्ध छति प्रतिनिधि।
बळय ताड़सारकु नियोगि। बक्षोज तुम्बिका थिबारु लागि से।
विमूळ बाहुयुगळ ये।
बाहुबन्ध देइ मुदि देले ताकु नोहिला लक्ष सकळ ये। १४।

सरलार्थ—सखियों ने सीता की प्रत्येक बाहु की, वीणादण्ड की विधि में (वीणादण्ड के रूप में), व्यवस्था की। सीता का अवनत स्कन्धदेश वीणा-छतरी का प्रतिनिधि (के सदृश) हुआ। बाहुपर कंगन व ताड़ी (बिजायट) पहनाने पर वे वीणासार के सदृश दिखाई पड़े। प्रत्येक स्तन उस बाहु-दण्ड की तुम्बी हुआ। अनन्तर दो मोटी बाहुओं पर बाजूबन्द (तथा उँगलियों में अँगूठियाँ) पहना कर उन्हें आच्छादित कर दिया। इस तरह अलंकारों से विमण्डित होने से बाहुओं का कोई अंश दिखाई नहीं पड़ा, जैसे वीणादण्ड के म्यान-मध्यस्थ होने पर उसका कुछ अंश दिखाई नहीं पड़ता है। (१४)

कले—की; विनत—अवनत; छति—छतरी; प्रतिनिधि—सदृश; बळय—कंगन; ताड़—ताड़ी (संस्कृत) बिजायट, बाहुका गहना; सार—वीणासार, वीणा का सार-भाग; बक्षोज—स्तन; विमूळ—मूलहीन; बाहुबन्ध—बाजूबन्द; मुदिदेले—मूँद दिया; आच्छादित कर दिया; ताकु—उनको; नोहिला लक्ष—दिखाई नहीं पड़ा। (१४)

बल्लीपरि गिरि लक्ष्यरु मात्र। विदृष्ट स्थानरे कि सृष्ट चित्र।
विभूषि स्वर्ण्णजरी नीळचोळी। बिळसाइ हार विचित्र झळि से।
बिन्ध्य मन्दर घोड़ाइ ये।
विद्युधारके घनधारे बळाकापन्तिए मिळि कि तहिँ ये। १५।

सरलार्थ—तदनन्तर सखियों ने स्तनद्वय पर उत्तम चित्र (कस्तूरी की पत्रावली) लिखे। (स्तनद्वय गिरियों के सदृश हैं। पर्वत पर

लता-पत्रों के सदृश यहाँ स्तनों पर लता-पत्र चित्रित हुए।) इसके बाद स्तनों को स्वर्णजरीयुक्त नीले रंग की चोलियों से विभूषित किया। फिर चोलियों पर मुक्तामाला पहनाई। इन सब ने विचित्र शोभा धारण की। इस दृश्य को देखकर प्रतीत होता है, मानो विन्ध्य व मन्दर पर्वत दोनों नीले मेघ से ढके हुए हों, उस नीले मेघ की गोद में बिजली खेल रही हो एवं मेघ में बगुलों की पंक्ति उड़ती जा रही हो। (१५)

बल्ली—लता; विदृष्ट स्थानरे—जो स्थान दिखाई नहीं पडता, स्तनदेश; नीळचोळी—नीली काँचली; घोड़ाइ—ढककर; बळाकापन्ति—बगुलों की पंक्ति; तहिं—वहाँ; (उत्प्रेक्षा) (१५)

बळा तुळाकोटि[1] खञ्जिले पादे। बोलिब तुळा कोटि[2] तुच्छ नादे।
विगूढ़ हंसक हरे गमन। विगूढ़-स्वन हंसक मण्डन से।
बन्धुर मार्ग जणाउँ य़े।
वर्ण्णभेद सिना झुण्टिआ खुण्टिआ प्रपदे रखिले तहुँ य़े। १६।

सरलार्थ—सखियों ने सीता के पैरों में बला (पायजेब, पैर का गहना) और तुळाकोटि (नूपुर) सजा दिये, जो अपने नाद से यह बात प्रकट करें कि हम कोटि तुलनाओं (करोड़ों उपमाओं) को तुच्छ कर रहे हैं अर्थात् धिक्कार कर रहे हैं। फिर पैर की उँगलियों पर (एक) विशेष गुप्त-शब्द करने वाले हंसक (बिछुवे) पहनाये, जो इस बात को प्रकट करें कि सीता का गमन हंस की गति की निन्दा करते हुए उस के सुख का हरण कर रहा है। और इसी उद्देश्य से कि बेहड़ जमीन की जानकारी सीता को हो, सखियों ने उनके पदाग्रों में झुंटिया नामक अँगूठियाँ पहना दीं। [खुंटिआ का अर्थ है बेहड़ पथ। झुँटिआ का अर्थ है अँगूठियाँ। दोनों शब्दों में एक ही प्रभेद ('ख' के स्थल में 'झ') मात्र है। अन्यथा दोनों शब्द तो बराबर ही हैं।] (१६)

तुळाकोटि[1]—नूपुर; तुळाकोटि[2]—करोड़ों उपमाएँ (यमक); विगूढ़—प्रकट; हंसक—बिछुवे, हंस पक्षी; विगूढ़स्वन विशेष गूढ़ (धीर) शब्द; खुंटिआ—बेहड़ जमीन; झुंटिआ—पैरकी अंगूठी; प्रपदे—पदाग्रों में; रखिले—रक्खी; तहुँ—अनन्तर। (१६)

बेढ़रे पादरे लेखिले लाक्षा। बारि हेला बेनि रंग कि दक्षा।
विकशित कोकनद मध्यर। बेढ़ि भ्रमे कि सरस्वती नीर से।
बंश नळीरे थिबार य़े।
बाछि पिन्धि दूर्वादळ-नीळ चेळ कोळ इच्छि श्रीरामरय़े। १७।

सरलार्थ—अनन्तर सखियों ने पैरों के चारों ओर अलता लगा दिया। परन्तु सीता के पैर तो सहज ही गाढ़े रक्तवर्ण के हैं। यह अलता रक्त-वर्ण होते हुए भी उनके पैरों की रक्तिमा के सम्मुख फीका दीखता है। इसलिए दोनों रंग (अलते तथा पैरों का रंग) बड़ी कुशलता से पहचाने जा सकते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो विकसित रक्तपद्मों के चारों ओर सरस्वती का लाल जल घेरा हो। अनन्तर बाँस की नली में रहने लायक (अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म) दूर्वादलवर्ण-विशिष्ट नीली साड़ी चुनकर सीता को पहनाई। दूर्वादलवर्ण-विशिष्ट रामचन्द्र इस प्रकार सीता को आलिंगन करेंगे—इस इच्छा से मानो उन्होंने नीले रंग की साड़ी सीता के शरीर पर जड़ित कर दी। (१७)

लाक्षा—अलता; बारि हेला—पहचाना गया; कि दक्षा—कितनी दक्षता या अच्छाई से; कोकनद—रक्त पद्म; बाछि—चुनकर; पिन्धि—पहनाई; दूर्वादल—दूब घास के समान; नीळ चेळ—नीली साड़ी; इच्छि—इच्छा करते हुए (उत्प्रेक्षा)। (१७)

वसनाञ्चळ य़े चळिले बेगे। बसना ठारे सेय़ोगीङ्कि य़ोगे।
विभङ्गे ताहा आगे कुञ्चा रञ्चि। व्यक्त नोहि ऊरु फुटि ए पाञ्चि से।
बान्धि कटिरे किंकिणी य़े।
बाजि किणि किणि चित्त नेब किणि चाहिँले नयन-एणी य़े। १८।

सरलार्थ—वस्त्र-परिधान के बाद उसका आँचल पवन से शीघ्रता से संचालित होने लगा। यह दृश्य देखकर कवि को ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह आँचल योगियों को "योग में मत बैठो" ऐसा संकेत (इंगित) से बोल रहा है। (अर्थात् पवन-चालित आँचल के दर्शन से योगियों का योग भी भ्रष्ट हो जाएगा।) फिर सीता के सम्मुख भाग में दोनों जंघे फूट न दीखें ऐसा सोचकर उन्होंने सामने वस्त्र को नाना परतों में कुंचित किया। कटि में किंकिणियाँ बाँधीं। वे सब 'किणि' 'किणि' बजती हुई देखने वाले मनुष्य के नयन-रूपिणी मृगी के चित्त को खरीद लेंगी। (अर्थात् वशीभूत कर लेंगी।) (१८)

वसनाञ्चळ—वस्त्र का आँचल, बस ना—मत बैठो; ठारे—इंगित करता है; विभंगे—विभिन्न परतों में; ताहा आगे—उसके सामने; कुंचा—कुंचिन; ऊरु—जंघे; पांचि—सोचकर; कटि—कमर; किंकिणी—करधनी; नेब किणि—मनको खरीद लेगा (वशीभूत कर लेगा); चाहिँले—देखने से; नयन-एणी—नयनरूपिणी मृगी। (१८)

बेळा जाणिबाकु सखी बसाइ। वीटिका नागवल्लीर भुञ्जाइ।
विड़म्ब नोहिला अतिशयरे। बाळ रवि द्योत जवा कि धरे से।
बतिशलक्षणा पुरी ये।
विधानी उपमा गीत चातुरीकि लक्ष्य-लक्ष्य दत्त करि ये। १९।

सरलार्थ—इस प्रकार वेशविन्यास के उपरान्त वरण का शुभ मुहूर्त्त जानने के लिए सखियों ने सीता को बैठाया और उन्हें अधर-रंजन के लिए पान की गिलौरी (बीड़ा) खिलाई। रक्तवर्ण-विशिष्ट सीता के अधर लाल रंग के पानरस से अधिक लाल हो गये। परन्तु उपहसित अर्थात् कृष्णवर्ण के नहीं हुए। (क्योंकि लाल से लाल रंग मिलने पर काला रंग बन जाता है।) बल्कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो जवा पुष्प ने बाल सूर्य की ज्योति को धारण किया हो। सीता बत्तीस लक्षणों के आश्रय-स्थल के रूप में प्रसिद्ध हैं, इसलिए इनकी शोभा अनिर्वचनीय है। केवल गीतचातुरी के लक्ष्य में विधानज्ञ कवि ने उनके अलंकार-भूषित अंग-प्रत्यंगों से पूर्वोक्त उपमाओं का सादृश्य भले ही दिया; परन्तु कोई एक भी उपमा वास्तव में उनकी शोभा के योग्य नहीं है। (१९)

बेळा—शुभलग्न; वीटिका—पान की गिलौरी; नागबल्ली—पान; भुञ्जाइ-खिलाई। विड़म्ब—उपहास का विषय; जवा—अड़हूल; विधानी—विधानज्ञ; लक्ष्य—उद्देश्य; लक्ष्य—सादृश्य। (१९)

विभूषा हेमरत्नं येते कहि। बाळामणि शाण रसाण तहिँ।
विदळि अञ्जन कस्तूरी निशि। विधु बिधिवशुँ उज्ज्वळ दिशि से।
विदेहजा पद गुणि ये।
विंशति पदे ए छान्द उपइन्द्र भञ्ज वीरवर भणि ये। २०।

सरलार्थ—ऊपर जितने स्वर्ण तथा रत्ननिर्मित अलंकारों की बात कही गयी, बालामणि सीता के अंग-प्रत्यंग उन सबके लिए शाण तथा रसान (गिलट) के सदृश हुए। अर्थात् सीता के अंग-प्रत्यंगों-रूपी शाण तथा रसान के स्पर्श से उन अलंकारों ने अधिक उज्ज्वल तथा दीप्ति-युक्त शोभा धारण की। (सीता को उज्ज्वल तथा सुन्दर करने के बजाय, वे अलंकार स्वयं ही उज्ज्वल तथा सुन्दर दिखाई दिये, जैसे स्वर्ण तथा रत्न शाण तथा रसान के स्पर्श से अधिक उज्ज्वल हो जाते हैं।) उनके

शरीर पर मर्दित काले कज्जल तथा कस्तूरी ने गौरवर्णा सीता के अंगों के स्पर्श से समुज्ज्वल होकर अपनी-अपनी शोभा की वृद्धि उसी प्रकार की जैसे कृष्णवर्णा रात्रि चन्द्र के द्वारा अपने को समुज्ज्वल तथा सुन्दर बनाती है। उन्हीं विदेह- राजकन्या सीता के पाद-पद्म को स्मरण करते हुए उपेन्द्रभञ्ज ने इस छान्द को बीस पदों में वर्णन किया। (२०)

विभूषा—अलंकार, बाळामणि—युवती-श्रेष्ठा; शाण—सान, कसौटी; रसान—गिलट, मुलम्मा, चाँदी के रंग की एक घटिया धातु; भणि—वर्णन किया। (२०)

॥ इति दशम छान्द ॥

एकादश छान्द

राग—बसन्त-बराड़ी

बेळ शुभदरे प्रवेश आदेश वेश सखीए सारिथिले।
विचारे सुमना[1] श्रीकरे सुमना[2] सुमना-माळा[3] नेइ देले।
बोइले, वशक ए कळा भृंगर।
बसि दशरथ-सुत-जानु-रथ ये मनोरथ सार्थ कर। १।

सरलार्थ—"सीता (इसी) शुभ मुहूर्त्त में सभामण्डप पर उपस्थित होकर रामचन्द्रजी को वरण करें"—(जनकजी का) यह आदेश सीता तथा उनकी सखियों के समीप पहुँचने के पूर्व ही सखियाँ सीताजी का वेश-विन्यास कर चुकी थीं। अब आदेश पाते ही सुचतुर सखियों ने विचार करके विदुषी सीता के कर-कमलों में एक मालती की पुष्पमाला दी और कहा, "यह माला काले भ्रमर की वशकारिणी है"। (अर्थात् सखियों ने श्लेष में सीताजी से कहा, "इसी पुष्पमाला के द्वारा तुम भ्रमरोपम रामचन्द्रजी को अपनी ओर आकर्षित करो"।) अयि सीते! दशरथ-सुत रामचन्द्रजी के जानू (जांघ)-रथ पर बैठ तुम अपनी मनकामना पूर्ण करो। (१)

बेळ शुभदरे—वरण के शुभ लग्न या मुहूर्त्त में; सारिथिले—समाप्त किया था; सुमना ([1])—सुचतुर सखियाँ; सुमना ([2])—उत्तममना, पण्डिता, विदुषी (सीता); सुमनामाल ([3])—मालती-पुष्पमाला (यमक); वशक—वश करने वाली, वश-कारिणी; कळा भृंगर—काले भ्रमरोपम रामचन्द्रजी की; बसि—बैठ; दशरथ-सुत—रामचन्द्र; जानु-रथ—जंघा रूपी रथ। (१)

बेष्टिततर तरळाक्षीकि तार तार परिधिकि विधुरे।
विधिरे[1] मंगळ विधिरे[2] के हुळहुळिकि बिहिले विधीरे[3]।
विञ्चन्ति, विधुचूर्ण केहु आगरे।
बजाइ हेजाइ मार्ग के प्रवीणा वीणा धरि अनुरागरे। २।

सरलार्थ—सखियाँ चंचलाक्षी सीता को निविड़ (घने) रूप से घेरती रहीं, मानो उज्ज्वल वर्ण वाले तारों के समूह ने चन्द्रमा को घेरा हो।

उनमें से किसी ने मंगल विधान की सूचना के स्वरूप उच्च स्वर में उलु-ध्वनि (स्त्रियों की मुख-निःसृत 'ळू' 'ळू' ध्वनि) दी। सभा-मण्डप को जाते समय किसी सखी ने सामने कर्पूर की धूलि (कपूर का चूरा) बिखेर दी। मार्ग जताने के उद्देश्य से कोई सखी सानुराग वीणा बजाती हुई सीताजी के आगे-आगे चलने लगी। (२)

वेष्टिततर—निविड़ (अत्यन्त घने) रूप से घेरना; तरळाक्षीकि—चंचलाक्षी (सीता) को; तार तार—उज्ज्वल तारे; परिधि—मण्डल, समूह; विधुरे—चन्द्रमा को; विधिरे(१)—विधान या रीति के अनुसार; मंगल-विधिरे(२)—मंगल कार्य में; के—कोई, किसी ने; हुळ हुळि कि—स्त्रियों की मुख-निःसृत 'ळू' 'ळू' ध्वनि, विधीरे (३) — (विगत हुई है धीरता जिससे) — उच्च स्वर से, (यमक) बिञ्चन्ति—बिखेरती है; विधु चूर्ण—कपूर का चूरा; केहु—कोई; आगरे—आगे, सामने; बजाइ—बजा कर; हे जाइ—जताकर, सूचनादे कर (उत्प्रेक्षा)। (२)

व्यजन रंजन करि के चाळन्ति ढाळन्ति के खदी चामर।
वक्ता मणिमा मणिमा पदरे के अणिमादिदायी छामुर।
वारिधि, बारिमध्युँ बेढ़ि रम्भादि।
बिजे करान्ति उत्पत्तिदिने सुरासुर (शूराशूर) आगे श्री कि संपादि।३।

सरलार्थ—फिर सखियों में से किसी ने सीता के सम्मुख व्यजन (पंखा) डुलाया। किसी ने खदी का चामर डुलाया। अणिमादि अष्टैश्वर्य-दायिनी सीता के सामने किसी-किसी ने देवी (हुजूर या श्रीमती) का राज-सम्बोधन किया। उसे देखकर प्रतीत होता है जैसे रम्भा आदि अप्सराओं ने सागर से उत्पन्न लक्ष्मी के जन्म दिवस में उन्हें चारों ओर से घेरकर साड़म्बर सुरासुरों के सामने नारायण तक पधराया था, उसी प्रकार यहाँ सखियाँ सीता की शोभा बढ़ाकर उन्हें घेरती हुई रामचन्द्र के समीप पधरा रही हैं। (३)

व्यजन—पंखा; मणिमा—(एक राजकीय सम्बोधन, सम्भवतः 'मणिमान्' शब्द से अपभ्रष्ट) देवी (हुजर या श्रीमती); ऐश्वर्य्यदायी—अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, गरिमा, ईशित्व तथा वशित्व आदि आठ ऐश्वर्य देने वाली (सीता); छामुरे—सम्मुख में; विजे करान्ति—पधराती हैं; सुरासुर—देवता तथा असुर (सागर-सम्भूता लक्ष्मी के पक्ष में); शूराशूर—वीर तथा भीरु राजा (सीता के पक्ष में); श्रीकि—लक्ष्मी को; शोभा का (संपादन पूर्वक) (उत्प्रेक्षा)। (३)

वितान-चीर धरिछन्ति उपर वीचिर रुचिर सेहित।
बळानिनाद प्रबळा अबळाङ्क शुक्ति उक्ति कि से मोहित।
वासुकि, बाहु कि उरज मन्दर।
विचळित स्वतः लळित कळित अछि हास-सुधा संचार।४।

तरावया गहन। जहाज अद्भुत रामचरण। त्यावरी ध्वज विराजमान। रात्रंदिन तळपतसे। १७४ काम क्रोध दुर्धर असुर। त्यांचें छेदावया शिर। देदीप्यमान दिव्य चक्र। रामतळवां झळकतसे। ७५ मळरहित प्रपद सुंदर। घोंटीव त्रिकोणयंत्राकार। इंद्रनीळ उपमा साचार। न पुरती कठीण म्हणोनियां। ७६ पदतलें आरक्त साजिरीं। वसे तेथें सरसिजोद्भवकुमारी। विश्रांति ध्यावया अहोरात्रीं। रामचरणीं रंगली हो। ७७ किती पापें हरावीं दिवसरजनीं। म्हणोनि श्रमली जन्हुनंदिनी। शुभ्र वांकी होउनी। रामचरणीं विराजे। ७८ मांड्या सुकुमार सांवळिया। तेथें सुरवाडली मित्रतनया। कीं यमानुजा अपवाद चुकवावया। महदाश्रय करीतसे। ७९ ऐसी रामपदीं त्रिवेणी साचार। प्रयाग तीर्थराज पावन थोर। प्रेमें माघमासीं सभाग्य नर। प्रातःस्नानासी

ध्वज नामक चिह्न उस पर विराजमान हो रात दिन चमकता है—उज्ज्वल रूप से शोभायमान है। १७४ काम और क्रोध दुर्दम्य राक्षस हैं। उनके मस्तक को छेदने के लिए राम के तलुवे में दैदीप्यमान चक्र (नामक) दिव्य चिह्न झलकता है। ७५ (भगवान् के) तलुवे निर्मल तथा सुन्दर हैं। वे सुडौल तथा त्रिकोण-यंत्र के-से आकारवाले हैं। इन्द्रनील नामक रत्न कठिन होता है, इसलिए (उन तलुवों की) उपमा के लिए सचमुच वह पर्याप्त नहीं है—उचित नहीं है। ७६ (राम के) तलुवे आरक्त (लाल-से) और सुन्दर (शोभायुक्त) हैं। वहाँ ब्रह्माजी की कन्या सरस्वती विश्राम करने के लिए रातदिन निवास करती है। वह राम के चरणों में लीन हो गयी है। ७७ रात दिन कितने पापों का परिहार (नाश) करें?—ऐसा कह (सोचकर) जह्नु राजा की कन्या गंगा थक गयी। और शुभ्र (रंग की) बाँक (एक आभूषण) बनकर राम के चरणों में विराजमान रहती है। ७८ (उनकी) जंघाएँ सुकुमार (अति कोमल) और साँवले रंग की हैं। (मानो) वहाँ सूर्य-कन्या यमुना लीन हुई (हो) अथवा यमराज की छोटी बहन-यमुना अपकीर्ति (बदनामी) को टालने के हेतु महान् देवता के आश्रय को पकड़े हुए है। ७९ इस प्रकार राम के चरणों में (सरस्वती, गंगा और यमुना) त्रिवेणी तीर्थ-सचमुच (उपस्थित) है। (वहाँ) महान् पवित्र तीर्थराज प्रयाग (विद्यमान) है, जहाँ भाग्यवान मनुष्य प्रेम (भक्ति) पूर्वक माघ महीने में प्रातःस्नान के लिए दौड़े जाते हैं। १८० भक्त, मुमुक्ष (मुक्ति के अभिलाषी), साधक

धांवती । १८० भक्त मुमुक्षु साधक संत । हेचि राजहंस विराजत । वांकीवरी रत्नें तळपत । तेचि तपस्वी तपताती । ८१ चरणध्वज झळके स्पष्ट । तोचि जाणिजे अक्षयवट । जेथें सनकादिक वरिष्ठ । क्षेत्रसंन्यासी जाहले । ८२ प्रयागीं मोक्ष देह त्यागितां । येथें मोक्ष श्रवण करितां । देहीं असतां विदेहता । येत हाता भक्तांच्या । ८३ त्या प्रयागीं कष्ट बहुत । येतां जातां भोगिती अमित । हा प्रयाग ध्यानीं अकस्मात । प्रकटे सत्य भक्तांच्या । ८४ तोडर वांकी नूपुरें । असुरांवरी गर्जती गजरें । वाटे नभ गाळोनि एकसरें । पोटऱ्या जानू वोतिल्या । ८५ कीं सरळ कर्दळीचे स्तंभ । कीं गरुडपाचूंचे उगवले कोंभ । कीं इंद्रनीळ गाळोनि सुप्रभ । जानू जंघा वोतिल्या । ८६ मिळाल्या सहस्र चपळा । तैसा कांसे झळके पीतांबर पिवळा । वरी तळपे कटिमेखळा । पाहतां डोळां आल्हाद । ८७ कटिमेखळेवरी

और सन्त—ये ही (मानो) राजहंस विराजमान हैं। बाँक पर जो रत्न चमकते हैं, वे ही (मानो) तपस्वी हैं, जो तपस्या कर रहे हैं। ८१ (राम के) चरणों में स्पष्ट रूप में ध्वज (नामक चिह्न) उज्ज्वलता के साथ दिखायी देता है; उसे ही (प्रयाग तीर्थ क्षेत्रस्थ) अक्षयवट समझो; जहाँ पर सनकादिक श्रेष्ठ ऋषि क्षेत्रस्थ संन्यासी हो गये। ८२ (उस) प्रयाग में देह का त्याग करने पर मोक्ष मिलता है, तो यहाँ (रामचरण रूपी प्रयाग में राम नाम) श्रवण करने से मोक्ष लाभ होता है और देह धारण किये हुए रहने पर भी यहाँ भक्तों के हाथ विदेहता लग जाती है। ८३ उस प्रयाग में आने-जाने में (लोग) असंख्य कष्टों का भोग करते हैं। (परन्तु) यह प्रयाग तो भक्तों के ध्यान में सचमुच अकस्मात् प्रकट हो जाता है। ८४ (राम के चरणों में पहने हुए) तोड़र, बाँक और नूपुर (नामक आभूषण) झनकते हुए (मानो) असुरों पर गरज रहे हैं। जान पड़ता है कि आकाश को एकदम (अथवा एक प्रवाह में) पिघलाकर उससे (राम की) पिंडलियाँ और घुटने ढाले (गढ़े) गये। ८५ अथवा (राम के) उरु (जंघाएँ) कदली (केले) के सरल स्तम्भ (खंभे) हैं, अथवा राजनील रत्न के अंकुर फूट (उग) गये, अथवा तेजस्वी इन्द्रनील रत्नों को पिघलाकर (राम के) घुटनों और जंघाओं को (ढालकर) गढ़ा है। ८६ हज़ारों बिजलियाँ एकत्रित हो जाएँ (तो वे जैसे चमकती हों) वैसे ही राम के कछौटे में पीत पीताम्बर झलकता है। उसके ऊपर कमर में (बँधी) मेखला (करधनी) दमकती है। (इन्हें) देखने पर

महामणी । कीं पंक्तीं बैसले वासरमणी । दाहकत्व सांडूनि जघनीं । श्रीरामाच्या लागले । ८८ वेदांतींच्या श्रुति गहन । अर्थ बोलती जेवीं शोधून । तैशा क्षुद्रघंटा रुणझुण । शब्द करिती रसाळ । ८९ देखून कटिप्रदेश सुकुमार । लाजोनि वना गेला मृगेंद्र । वाटे त्या दुःखें स्वशरीर । वाहन केलें दुर्गेचें । १९० गंभीरावर्त नाभिस्थान । जेथें जन्मला चतुरानन सत्व रज तम गाळून । त्रिवळी उदरीं विराजे । १ कौस्तुभतेज अपार । पाहतां भुलती शशिमित्र । गुणीं ओंविलीं नक्षत्रें समग्र । मुक्ताहार डोलती तेवीं । ९२ कीं त्या मुक्तांच्या माळा बहुत । रघुपतीच्या गळां डोलत । कीं मुक्तारूपें समस्त । अनन्त ब्रह्मांडें गुंफिलीं । ९३ मुक्तामाळांचें तेज गहन । परी त्यांचा पालटला वर्ण । दिसती इंद्रनीळासमान । श्यामलांगीं रघुपतीच्या । ९४ नीळ गगनावरी सुंदर ।

आँखों को आह्लाद होता है । ८७ कमर में बँधी मेखला (करधनी) में बड़े-बड़े रत्न हैं; मानो (अनेक) सूर्य ही पंक्ति में बैठे (हुए हों) और अपनी दाहकता छोड़कर वे श्रीराम की कटि में लगे (हुए हों) । ८८ जैसे (तत्त्वज्ञानी) वेदान्त की गहन श्रुतियों का परीक्षण कर अर्थ कहते हों वैसे (राम की) करधनी में बँधे छोटे-छोटे घुँघरू रसीले (मधुर) झनझन शब्द (उत्पन्न) कर रहे हैं । ८९ (राम का) सुकुमार (अति कोमल) कटि प्रदेश देखकर मृगेन्द्र (सिंह) लज्जित हो वन में (निवास करने) चला गया । जान पड़ता है, उसी दुःख से उसने अपने शरीर को देवी दुर्गा का वाहन बना दिया । (देवी दुर्गा सिंह पर विराजमान रहती है ।) १९० जहाँ चतुर्मुख ब्रह्माजी का जन्म हुआ, वह (श्रीराम अर्थात् भगवान् विष्णु का) नाभिस्थान मानो गम्भीर (गहन) गूढ़ भँवर है । सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणों को गलाकर बनायी हुई त्रिबाली उदर पर शोभायमान है । ९१ (भगवान् के पहने हुए) कौस्तुभ नामक रत्न का तेज असीम है; उसे देखकर चन्द्र और सूर्य मोहित हो जाते हैं । मोतियों के हार ऐसे झूलते हैं कि (जान पड़ता है,) समस्त तारे सूत्र में पिरोये हुए हैं । ९२ अथवा उन मोतियों की बहुत-सी मालाएँ रघुपति राम के गले में झूलती हैं । मानो समस्त अनगिनत ब्रह्माण्ड मोतियों के रूप में गूँथे हों । ९३ मोतियों की मालाओं का तेज तो गहन है । परन्तु उनका (मूल) वर्ण बदल गया । राम के श्याम शरीर पर वे (मोती) इन्द्रनील रत्नों के समान दिखायी दे रहे हैं । ९४ नीले आकाश में सुन्दर

मंदाकिनीओघ दिसे शुभ्र । तैसा अम्लान सुमनहार । श्याम-तनुवरी शोभत । ९५ श्यामलांगीं अति निर्मळ । वरी डोले वैजयंती माळ । पुष्करीं शक्रचाप सुढाळ । सुरंग जैसें मिरवतसे । ९६ कीं मेघीं स्थिरावली क्षणप्रभा । तैसी वैजयंतीची शोभा । सहस्रमुखाच्या जिभा । गुण वर्णितां शिणल्या हो । ९७ अनंत भक्त हृदयीं धरिले । तरीच वक्षःस्थळ रुंदावलें । ब्रह्मानन्द मुरोनि वोतिलें । हृदयस्थान सत्य पैं । ९८ श्रीवत्स झळके सव्यांगीं । श्रीनिकेतन वामभागीं । उटी शोभे श्यामलांगीं । कोण्या दृष्टांतें तें ऐका । ९९ मित्रकन्येवरी जान्हवीजळ । कीं राका-इंदुप्रभेनें शोभे निराळ । कीं देदीप्य मणि इंद्रनीळ । आवरण त्यावरी काश्मीराचें । २०० कीं हळाहळ जाहलें अपार । म्हणोनि धांवला कर्पूरगौर । चंदनरूपें तो प्राणमित्र । श्यामलांगीं जडला हो । २०१ तैसी उटी दिसे सुढाळ । कीं चंद्रबिंब उकले निर्मळ । कीं मुक्ताफळांचा गोळा

गंगा का प्रवाह जैसे शुभ्र दिखायी देता है, वैसे राम के श्याम (नीले) शरीर पर अम्लान (तरोताज़ा) पुष्पहार शोभा दे रहा है। ९५ भगवान् के अति निर्मल श्याम शरीर पर वैजयंती माला झूलती है। जान पड़ता है कि आकाश में सुडौल तथा रंगीन इन्द्रधनुष शोभायमान हो रहा है। ९६ अथवा बादल में बिजली स्थिर हो गयी हो, वैसे (भगवान् के श्याम शरीर पर) वैजयंती माला सुशोभित है। सहस्रमुखी शेष की सहस्र जिह्वाएँ उसके गुणों (अच्छाई-सुन्दरता) का वर्णन करते हुए थक गयीं। ९७ (जान पड़ता है,) भगवान् ने असंख्य भक्तों को सीने से लगाया (आलिंगन किया), इसलिए ही उनका वक्षःस्थल चौड़ाई को प्राप्त हो गया। सचमुच ब्रह्मानन्द के पक्व हो जाने पर उससे उनका हृदय-स्थान ढाला (गढ़ा) है। १९८ वक्षःस्थल के दाहिने भाग में श्रीवत्स चिह्न झलक रहा है, तो बायें अंग में श्रीनिकेतन—अर्थात् लक्ष्मी के निवास-स्थान को सूचित करनेवाला चिह्न है। उनके श्याम शरीर में उबटन शोभायमान है। वह कैसे—किस दृष्टान्त से—सुनो। १९९ (जान पड़ता है,) सूर्यकन्या यमुना के जल पर जह्नु-कन्या गंगा का जल (बहता) हो; अथवा पौर्णिमा की चाँदनी से आकाश सुशोभित हो; अथवा दैदीप्यमान इन्द्रनील रत्न पर केसर का आवरण (डाला) हो। २०० अथवा हलाहल विष अपार बढ़ गया, अतः कर्पूर के समान गौर शरीरधारी भगवान् शिवजी दौड़े और वे (विष्णु के) प्राणसखा चन्दन के रूप में (उनके) श्यामल

सुढाळ । इंद्रनीळा चर्चियेला । २०२ शंख चक्र धनुष्य बाण । चोहों हस्तीं शोभायमान । हस्तकटकांचे तेजेंकरून । उजळीत नभातें । २०३ क्षणप्रभेचीं चक्रें तळपती । तैशा मुद्रिका करीं झळकती । किंवा औपासक यंत्रें रेखिती । तेचि गती येथें दिसे । २०४ प्रळयाग्नीनें उघडिले नयन । तेवीं कीर्तिमुखें परिपूर्ण । कीं निष्कलंक रोहिणीरमण । पदक हृदयीं डोलतसे । ५ कंबुकंठ अति शोभत । नासिक सरळ सुकुमार बहुत । मंदस्मित-वदन विराजत । कोटि मन्मथ ओंवाळिजे । ६ विद्रुमवर्ण अधर सतेज । माजी ओळीनें झळकती द्विज । त्या तेजें शशि नक्षत्रें तेजःपुंज । झांकोळती पाहतां । ७ त्रैलोक्यींचा मेळवोनि आनन्द । वोतिलें रामाचें वदनारविंद । आकर्ण नेत्र भ्रुकुटी विशद । धनुष्याकृती शोभती । ८ स्वानंदसरोवरींचीं कमलदलें । तैसे आकर्ण नयन विकासले । त्या कृपादृष्टीनें निवाले । प्रेमळ

शरीर में लिपट गये । उसी प्रकार यह सुन्दर उटी दिखायी देती है । अथवा (जान पड़ता है,) निर्मल चन्द्र-बिम्ब उदित हो गया हो, अथवा इन्द्रनील रत्न में मोतियों का तेजस्वी गोला लगाया (घिसा) हो । २०१-२०२

भगवान् के चारों हाथों में शंख, चक्र, धनुष और बाण शोभायमान हैं । वे हाथों में पहने हुए आभूषणों की कान्ति से आकाश को उज्ज्वल बना रहे हैं । २०३ बिजली के चक्र जैसे चमकते हैं, वैसे (भगवान् के) हाथों में अंगूठियाँ झलकती हैं । उपासक जन यंत्र (इष्ट देवता की पूजा के लिए आवश्यक गूढ़ रेखात्मक आकृति) अंकित करते हैं—वही गति यहाँ दिखायी देती है । २०४ प्रलयकाल के अग्नि देवता ने नेत्र खोले हों, वैसे (भुजदण्डों में पहने हुए) कीर्तिमुख (श्रृंगाकार) आभूषण पूर्णतः तेजस्वी हैं । हृदय पर पदक के रूप में मानो निष्कलंक चन्द्रमा ही झूलता है । ५ शंखाकृति कण्ठ अति शोभायमान है । नाक सरल और अति कोमल है । मुख मन्द स्थित से ऐसा शोभायमान है कि करोड़ों कामदेव (उस पर) निछावर करें । २०६ ओंठ तेजस्वी मूँगे के वर्णवाले हैं । (उनके) बीच में दाँत पंक्ति में झलक रहे हैं । देखने पर चन्द्र और तेजःपुंज तारे उनके (दाँतों के) तेज से फीके दिखायी देते हैं । ७ तीनों लोकों के आनन्द को एकत्रित करके (उससे) राम का मुख-कमल ढाला (गढ़ा) है । (उनके) नेत्र आकर्ण, अर्थात् कानों तक फैले हुए हैं और निर्मल भौंहें धनुषाकार शोभायमान हैं । ८ आत्मानन्द रूपी सरोवर में कमलदल विकसित हुए हों, वैसे (राम के) नयन (रूपी कमल) आकर्ण (कानों तक)

जन सर्वही । ९ कुंडलें तळपती मकराकार । कीं जडले रविरोहिणीवर । कीं अंगिरापुत्र भृगुपुत्र । विचार पुसती रामातें । २१० कीं वेदसागरींच्या रत्नज्योती । पूर्वउत्तर मीमांसा निश्चितीं । कुंडलरूपें जाणविती । अर्थविशेष स्वामीतें । ११ श्रीरामतनु सुकुमार । तेणें शोभती अलंकार । पीतवर्ण टिळक सुंदर । अनुपम्य रेखिला । १२ सुवर्णोदक नदीचा पूर । नीळगिरिपाठारीं निरंतर । तैसा टिळक सुंदर । विशाळ भाळीं झळकतसे । १३ जैसा कल्पांतींचा दिनकर । तैसे मुकुट दिसे जाज्वल्य सुंदर । तेज तळपतसे अपार । चक्रामाजी न समाये । १४ दावाग्नीचा कल्लोळ भडकत । तैसें उत्तरीय वस्त्र रुळत । दशांप्रति मुक्तें झळकत । कृत्तिकापुंज जयापरी । १५ तें परम तेजाळ क्षीरोदक । कीं शुभ्र यशा चढलें बीक । शुभ्रश्वेत मृडानीनायक । कर्पूरेंकरूनि उटिला कीं । १६ कीं दिव्य रजत-

---

विकसित हुए हैं । (उनकी) उस कृपादृष्टि से सभी श्रद्धालु लोग शान्ति को प्राप्त हो गये । ९ मकराकृति (मछली के आकार वाले) कुण्डल (कानों में) ऐसे झलकते हैं कि (जान पड़ता है,) सूर्य और चन्द्र जड़े हुए हों; अथवा गुरु के और शुक्र के पुत्र राम से परामर्श कर रहे हों । २१० पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा की उक्तियों के समूह मानो वेद रूपी सागर की रत्नज्योतियाँ हैं, जो (राम द्वारा पहने हुए) कुण्डलों के रूपों में अपने स्वामी को (उक्तियों का) विशिष्ट अर्थ समझा रही हैं । ११ श्रीराम का शरीर विशेष रूप में कोमल है । उससे (उनके द्वारा पहने हुए) आभूषण शोभा को प्राप्त हैं । (मस्तक पर) पीले रंग का सुन्दर अनुपम तिलक अंकित है । जैसे सुवर्ण-जल वाली नदी का बाढ़ वाला प्रवाह नील पर्वत के पठार में बराबर बह रहा हो, वैसे (राम के) विशाल भाल-प्रदेश में सुन्दर तिलक झलकता है । १२-१३ जिस प्रकार कल्पान्त समय का सूर्य (तेजस्वी) होता है, उसी प्रकार (राम का) मुकुट सुन्दर और जाज्वल्यमान दिखायी देता है । (उसका) तेज असीम झलकता है, जो चक्र (मण्डल) में नहीं समा रहा है । १४ जिस प्रकार दावाग्नि का ज्वालाजाल भभकता रहता है, उसी प्रकार (राम का) उत्तरीय वस्त्र (जाज्वल्यमान रूप में) सुशोभित है । जिस उत्तरीय पर मानो कृत्तिका-पुंज (तारे) टँके हुए हैं, उसकी दशाओं (छोर के अनगूँथे धागों) में मोती चमकते हैं । १५ (उसे देखने पर जान पड़ता है कि) वह परम तेजोमय क्षीरसागर का जल हो, अथवा धवल (उज्ज्वल) कीर्ति पर तेज चढ़ा हो; अथवा

तगट घडलें। कीं पारदें कैलास डवरिलें। कीं जान्हवीतोयें ओपविलें। दिनकरनाथें स्वहस्तें। १७ सच्चिदानन्दतनु सगुण। अतसीकुसुमाभास पूर्ण। त्याचि रंगेंकरून। नीलोत्पलें राबविलीं। १८ नभासी चढला तोच रंग। त्याचि प्रभेनें रंगले मेघ। इंद्रनीळही सुरंग। त्याच प्रकाशें प्रकाशले। १९ तेथींचें सौंदर्य अद्भुत। गरुडपाचूंसी तेज दिसत। मर्गजासी बीक चढत। तनु सांवळी देखोनियां। २२० तो वैकुंठींचा वेल्हाळ सुंदर। भक्तमंदिरांगणमंदार। कुरवंडी करूनि सांडावे साचार। कोटि मकरध्वज वरोनियां। २१ ब्रह्मांड फोडोनि बाहेरी। अंगींचा सुवास धांवत वरी। लावण्यामृतसागर कैटभारी। लीलावतारी साधक जो। २२ पूर्णब्रह्मानंद रघुवीर। लीलाविग्रही श्रीधरवर। हृदयीं रेखिला निरंतर। निजभक्तीं प्रेमभरें। २३ असो कौसल्या बोले ते अवसरीं। भक्तवत्सला मधुकैटभारी। तूं आतां बाळवेष धरीं। माझे उदरीं

अत्यन्त गौरवर्णीय पार्वतीपति शिवजी को कपूर से लेप लगाया हो; अथवा दिव्य रूपे की जरी का वस्त्र बनाया हो; अथवा पारे से कैलास को सुशोभित किया हो; अथवा सूर्य ने अपने हाथों गंगाजल से मुलम्मा किया (हो)। १६-१७ सच्चिदानन्द का यह सगुण शरीर पूर्णतः अलसी के फूलों-सा दिखायी देता है। उसी रंग से नीलकमलों की उपज करायी (हो)। २१८

आकाश पर वही रंग चढ़ा; उसी कान्ति से बादल रँगे हैं। रंगीन इन्द्रनील रत्न भी उसी प्रकाश (कान्ति) से प्रकाशमान है। १९ वहाँ की सुन्दरता अद्भुत है। राम का साँवला शरीर देखकर राजनील रत्न में तेज दिखायी देता है और मरकत रत्न को भी तेज चढ़ता है। २२० वैकुण्ठ के वे सुन्दर स्वामी (भगवान् विष्णु) भक्तों के मन्दिर के आँगन में स्थित मन्दार नामक कल्पवृक्ष हैं। (वे इतने सुन्दर हैं कि) उनके ऊपर सचमुच करोड़ों कामदेव निछावर कर दें। २१ उनके अंग की सुगन्ध ब्रह्माण्ड को भेदकर ऊपर दौड़ती है—अर्थात् ब्रह्माण्ड में नहीं समा रही है। जो लीला-अवतारों को सिद्ध करनेवाले भगवान् विष्णु हैं वे लावण्य (सुन्दरता) रूपी अमृत के सागर हैं और कैटभ नामक दैत्य के शत्रु हैं। २२ पूर्ण ब्रह्मानन्द रघुवीर, लीलाओं के कर्ता और लक्ष्मी के श्रेष्ठ पति को उनके अपने भक्तों ने प्रेम (भक्ति) पूर्वक अपने हृदय में अंकित करके नित्य रखा है। २२३

अवतरें। २४ लोक म्हणतील कौसल्यानन्दन। ऐसा होईं तूं मनमोहन। अमलदल राजीवनयन। हास्यवदन विलोकीं। २५ सजलजलदवर्ण कोमळ। कौसल्येपुढें जाहला बाळ। तंव ते परम सुवेळ। पुष्यार्कयोग ते समयीं। २६ जो क्षीरसागर-वासी तमालनीळ। तो कौसल्येपुढें जाहला बाळ। चरणांगुष्ठ धरोनि कोमळ। मुखकमळीं घालीतसे। २७ भक्त चरणीं लागले बहुत। गोड गोड म्हणोन वाखाणित। यालागीं गोडी रघुनाथ। स्वयें पाहत चाखोनियां। २८ कीं स्वचरणगोडी सेवित। भक्तांसी लोभ लागावया बहुत। म्हणोनियां कौसल्यासुत। कौतुकार्थ दावीतसे। २९ पुत्र झाला कौसल्येस। लागला वाद्यांचा एकचि घोष। सुरांसहित सुराधीश। जयजयकार नभीं करिती। २३० सुमनसंभार ते अवसरीं। देव वर्षती अयोध्येवरी। दुंदुभिनाद अंबरीं। न मायेचि तेधवां। २३१

अस्तु। उस समय कौसल्या बोली—'हे भक्तवत्सल और मधु-कैटभारि भगवान्, तुम अब बाल-वेश (बालक का रूप) ग्रहण करो और मेरे उदर से अवतरित हो जाओ। २४ हे मनमोहन, निर्मलदलों से युक्त कमल के समान नेत्रों वाले भगवान्, तुम ऐसा (बालक) हो जाओ, जिससे (तुम्हें) लोग कौसल्या का पुत्र कहें। तुम हँसमुख हो देखो। २५ (तदनन्तर, भगवान्) कौसल्या के सामने पानी भरे मेघ के समान (नीले) वर्ण वाले कोमल (शरीर धारी) बालक हो गये। तब उस समय पुष्यार्क योग नामक अति शुभ समय (मुहूर्त) था। २६ जो क्षीरसागर में निवास करने वाले, तमाल पत्र के-से नील वर्ण वाले (भगवान् विष्णु) हैं, वे कौसल्या के सामने शिशु हो गये। वे पाँव का कोमल अँगूठा पकड़कर मुख-कमल में डालते हैं। २७ अनेक भक्त उनके चरणों में लगे हुए हैं और उसे 'मीठा, मीठा' कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। इसलिए रघुनाथ राम उसे चखकर उसकी मधुरता स्वयं देख रहे हैं। २८ अथवा वे अपने चरण की मधुरता का सेवन करते हैं ताकि भक्तों को उसके प्रति लोभ (रुचि) उत्पन्न हो जाए। इसलिए कौसल्या के पुत्र (राम) लीला के हेतु यह दिखा रहे हैं। २९

कौसल्या के पुत्र (उत्पन्न) हुआ, तो (मंगल) वाद्यों का अतुल (बेजोड़) घोष हो गया। देवों सहित इन्द्र ने (आकर) आकाश में जय जयकार किया। २३० देवों ने उस अवसर पर फूलों के ढेर के ढेर अयोध्या पर बरसा दिये। तब नगाड़ों का नाद (गर्जन) आकाश में नहीं समा रहा था। २३१

यदि तथापितो रामक नेराहा स्वरूप बोलो बचन ।
निरन्तरे लोक रामर लगत चलि याइबो तपोबन ।।
राम बिने आमि अयोध्या नगरे साधिबो कमन काम ।
समज्यार लोक पातक छारोक डाकि बोला राम राम ।।८३२

राम लक्ष्मणक दिबलै सन्मत नोहोवात ऋषिर कोप आरु राम-लक्ष्मणक लै ऋषिर गमन

पद

दशरथ नृपतिर शुनिया बचन * महाकोप करि बले गाधिर नन्दन
रघुर बंशत तुमि भैला उतपति * धर्म्मशील हुया अधर्म्मत कैला रति८३३
पुत्रर स्नेहत मोक करस नैराश * मिछा मोहजाले परि कर धर्म्मनाश
नजानस कतगुण आछय रामत * बाहुबले जिनिबाक पारे त्रिजगत ३४
राक्षस मारिब रामे इटो कोन काज * बिमुख करह राजा दिया मोक लाज
कपटे भांडिया मोर आशा कर भंग * सबंशे नाशिब पुनु मोर भैले खंग ३५
आछन्त बशिष्ठ तोर मंत्रणार बास * तार बोले अपमान आमाक लगास
सत्ये सत्ये बोलो राजा मइ निष्ठ करि * निदिलि रामक जाओं क्रोध परिहरि ३६
निष्ठुर बचन राजा शुनिया मुनिर * पृथिवी कम्पन येन गाव नोहे स्थिर
आछोक नृपति चराचर कम्पि गैल * प्रलयर काल येन उपगत भैल ३७

फिर भी यदि राम के बिना काम न बने तो साफ-साफ बता दो। राम के साथ सारे लोग तपोवन चले जाएँगे। राम के बिना मैं अयोध्या नगर में कैसे अपना काम कर पाऊँगा। हे समाज के लोगो!, पाप छोड़ो और उच्च स्वर से राम का नाम लो ।। ८३२ ।।

राम-लक्ष्मण को देने को सम्मत न होने पर ऋषि का क्रोध और राम-लक्ष्मण को लेकर ऋषि का जाना

पद

राजा दशरथ के वचन सुनकर गाधि के नन्दन विश्वामित्र अत्यन्त क्रोधित होकर बोले, रघु के वंश में जन्म लेकर धर्मशील होते हुए भी तुमने अधर्म किया ।। ८३३ ।। पुत्र के स्नेह के मारे तुम मुझको निराश कर रहे हो। झूठे मोहजाल में फँसकर अपना सर्वनाश कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि राम में कितने गुण हैं। वह अपने बाहुबल से तीनों लोकों को जीत सकता है ।। ३४ ।। राम राक्षसों को मारेंगे यह कौन बड़ा काम है। हे राजा! तुम मुझको लज्जित कर विमुख कर रहे हो। छल से मुझको धोखा देकर तुम मेरी आशा भंग कर रहे हो। मुझको यदि क्रोध आ गया तो तुम्हारा सवंश नाश कर दूँगा ।। ३५ ।। तेरी मंत्रणा के लिए वसिष्ठ है। उसके कहने पर तू मुझको अपमानित कर रहा है। राजा यदि तुम मुझसे सच-सच बता दो तो मैं राम को न देने पर भी क्रोध त्याग कर चला जाऊँ ।। ३६ ।। मुनि का निष्ठुर वचन सुनकर राजा को लगा कि पृथ्वी कम्पित हो रही है और शरीर स्थिर

क्रोध प्रकम्पित विश्वामित्र मुनिबर * देखि अन्तरीक्ष धातु भैल निरन्तर
पात्र मित्र समे दशरथ महाराय * भय त्रासे भैल येन मृतक पराय ३८
अनन्तरे बशिष्ठे देखिया तमोमय * राजाक बोलन्त शुनियोक महाशय
प्रथमे ऋषिक तुमि बुलिला बचन * बुलियोक ऋषि किबा साधो प्रयोजन ३९
कदाचितो व्यर्थ नाहि बचन तोमार * एतेके रामक दिते भैल अंगीकार
सिटो अंगीकार आवे लरिला किमते * तुमि सत्यवन्त हेन जानय जगते ४०
नकरिबा राजा सत्यधर्म्म परिहार * तुमि सत्य लंघिले राखन्ता नाहि आर
सत्य सम धर्म्म आर पुरषर नाइ * जानि ऋषि संगे दियो रामक पठाई ४१
तांक नपठाइले बिश्वामित्रे दिबे शाप * गाधिर तनय महा प्रचंड प्रताप
हेन जानि रामर निमित्ते एरा शोक * ऋषिर बचन राखि रामक दियोक ४२
तांक पाइले ऋषिर सन्तुष्ट हैबे चित * नाना अस्त्रे शस्त्रे बिश्वामित्र सुशिक्षित
मुनिसबे अस्त्रशिक्षा दिबन्त रामक * ताके लैया रामे जिनिबेक राक्षसक ४३
बिशेषत बिष्णु रामरूपे अवतार * राक्षस कुलक रामे करिब संहार
अणुमात्रो चिन्ता नकरिबा महामानी * दशरथ राजा बशिष्ठर शुनि बाणी ४४
पाइलन्त भारसा तान शान्त भैल हिया * जिज्ञासा करन्त राजा रामक आनिया
आसि आछे बिश्वामित्र तोमाक निबाक * राक्षसक मारि राम यज्ञ राखिबाक ४५
शुनि रामचन्द्रर हरिष भैल मने * पितृक बोलन्त रामे प्रसन्न बदने
कत भाग्ये इसब कार्यक पाया लाग * मोक प्रति चिन्ता नकरिबा महाभाग ४६

नहीं है। नृपति को लगा चराचर कम्पित हो रहा है और प्रलय का काल आ गया है ॥ ३७ ॥ मुनिराज विश्वामित्र को क्रोध से काँपते देखकर सारा वातावरण भयविह्वल हो गया। पात्र मित्र सहित राजा दशरथ भय-त्रास से यों ग्रस्त हो गये मानों किसी की मृत्यु हो गई हो ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् सब कुछ अन्धकारपूर्ण देख कर बसिष्ठ राजा से बोले, हे महाराज! शुरू में तुमने ऋषि को इस प्रकार वचन दिया कि बोलो ऋषि वर! मुझको तुमसे कौन सी आवश्यकता है? ॥ ३९ ॥ तुम्हारा वचन कभी व्यर्थ नहीं गया। इस प्रकार तुमने राम को देने का वादा किया। उस वादे से किस प्रकार तुम हट गये। सारा संसार तुमको सत्यवादी के रूप में जानता है ॥ ४० ॥ हे राजन्! तुम सत्यधर्म का त्याग मत करो। तुम्हीं ने यदि सत्य का लंघन किया तो फिर रक्षा नहीं। पुरुष के लिए सत्य के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, यह जानकर ऋषि के साथ राम को भेज दो ॥ ४१ ॥ उनको न भेजने पर विश्वामित्र शाप दे देंगे। गाधि के पुत्र विश्वामित्र का प्रताप अत्यन्त प्रचंड है। ऐसे जानकर राम के लिए शोक का त्याग करो और ऋषि के वचन की रक्षा करते हुए राम को दे दो ॥ ४२ ॥ उनको पाने पर ऋषि का चित्त सन्तुष्ट होगा। विश्वामित्र विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों में दक्ष हैं। उन सभी अस्त्रों की शिक्षा वह राम को देगें। उस शिक्षा को ग्रहण कर राम राक्षसों को पराजित करेंगे ॥ ४३ ॥ विशेष रूप से विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया है। राम राक्षसकुल का संहार करेंगे। हे महामानी, तुम कतई चिन्ता न करो। राजा दशरथ ने बसिष्ठ की वाणी सुनकर— ॥ ४४ ॥ भरोसा प्राप्त किया और उनका चित्त शान्त हुआ। राम को बुलवाकर राजा ने पूछा, विश्वामित्र तुमको ले जाने के लिए आए हैं। अतः हे राम! तुम राक्षसों को मारकर उनके यज्ञ की रक्षा करना ॥ ४५ ॥ यह सुनकर रामचन्द्र का मन हर्षमग्न हुआ। राम ने प्रसन्न हो पिता से कहा, कितने भाग्य से ये सब कार्य मिलते हैं। हे महाभाग! मेरे लिए चिन्ता मत करना ॥ ४६ ॥ पुत्र

पुत्र हुया न पालय पितृर बचन * चिरकाले नरकत पचे सिटो जन
प्रचंड प्रताप मुनि गाधिर कुमार * ताहान कार्य्यत चिन्ता करा परिहार८४७
रामर बचने राजा भैल हरषित * मरार मुखत येन परिल अमृत
ऋषिर हातत राजा पुत्र समर्पिल * नमस्कार करि राजा बचन बुलिल८४८
रामे मोर धन जन जीव मन प्राण * राम बिने गति मोर नाहि नाहि आन
पाइलोहो रामक पुत्र कत तपस्याय * आवे ज्ञान गुण जानिबेक तयु ठाइ ४९
किछुवे नजाने राम छवाल चंचल * जानिबे अस्त्रर सन्धि तोमात सकल
तोमार सेवक राम भैल आजि धरि * निजदास बुलि पालिबाहा यत्न करि ५०
राघवक पाया मुनि भैलन्त सन्तोष * पूष्प बरषिला देवे करि जयघोष
सेहि बेला योरहाते उठिला लक्ष्मण * रामक बुलिला करि चरणे बन्दन ५१
मोक संगे नियो प्रभु जगतर पति * तोमार चरण बिने मोर नाहि गति
यथा तथा याइते नाथ नेरिबा आमाक * दास हुआ सेवा प्रभु करिबो तोमाक ५२
हासे राजा लक्ष्मणर शुनिया बचन * रामर संगत चलि याइवन्त लक्ष्मण
दुइ पुत्र दिला राजा ऋषिर लगत * यात्रा सुमंगल करिलन्त यत यत ५३
आपोनार अस्त्र यत लैया दुयो जन * दुइ भाई बशिष्ठक करिला बन्दन
पितृक मातृक करिलन्त नमस्कार * दशरथे दुइको शिक्षा दिला बारे बार ५४
पालिबाहा दुइ भाइ ऋषिर बचन * थाकिबाहा सदाय ऋषिर बुजि मन
ऋषिर क्रोधत सबे बंशे हैबो नाश * सर्व्वदाय थाकिबा ऋषिर पालि आश ५५

होकर जो पिता का वचन नहीं मानता वह चिरकाल तक नरक में सड़ता रहता है। गाधि के पुत्र विश्वामित्र प्रचंड प्रतापी हैं। उनके कार्य में चिन्ता करना छोड़ दो ॥ ८४७ ॥ राम के वाक्य सुनकर राजा हर्षमग्न हो गये मानों मृत व्यक्ति के मुख में अमृत पड़ा हो। राजा ने ऋषि के हाथों में पुत्र को सौंप दिया। और नमस्कार करते हुए कहा ॥ ८४८ ॥ राम ही में मेरा धन, जन, जीवन, मन तथा प्राण बसे हुए हैं। राम के बिना मेरी अन्य कोई गति नहीं। कितनी ही तपस्या के उपरान्त मैंने राम को पुत्र रूप में पाया। अब वह तुम्हारे पास ज्ञान व गुण को को प्राप्त करेगा ॥ ८४९ ॥ राम कुछ भी नहीं जानता है अभी वह चंचल बालक मात्र है। तुम से सभी अस्त्रों का भेद जान लेगा। आज से राम तुम्हारा सेवक बन गया। अपने दास के रूप में उसको यत्न पूर्वक पालते रहना ॥ ८५० ॥ राम को पाकर मुनि को बड़ा सन्तोष हुआ। देवताओं ने जयध्वनि कर पुष्पों की वर्षा की। उसी समय लक्ष्मण हाथ जोड़कर उठे और चरण-वन्दना करते हुए राम से बोले ॥ ८५१ ॥ हे प्रभु, जगत् के पति, मुझे अपने संग ले चलो। तुम्हारे चरणों के सिवा मेरी कोई गति नहीं। हे नाथ, जहाँ-तहाँ जाते वक्त मुझे अपने संग लो। दास बनकर मैं तुम्हारी सेवा करूँगा ॥ ८५२ ॥ लक्ष्मण के ये वचन सुनकर राजा हँसने लगे। राम के साथ लक्ष्मण भी जाएगा। राजा ने ऋषि के साथ दोनों पुत्रों को भेज दिया तथा यथारीति यात्रा के लिए उन्होंने सुमंगलपूर्ण कार्य किये ॥ ८५३ ॥ दोनों भाइयों ने अपने-अपने सारे अस्त्र ले लिये और वशिष्ट को तथा माता-पिता को नमस्कार किया। दशरथ ने दोनों को बार-बार उपदेश दिया ॥ ८५४ ॥ "तुम दोनों भाई सदा ऋषि का कहना मानना, ऋषि का मन समझकर सदा रहना, नहीं तो ऋषि के क्रोध से सारे वंश का नाश हो जायगा। हमेशा ऋषि की सभी आज्ञाएँ पूर्ण करते रहना" ॥ ८५५ ॥ यह कहकर वह दोनों पुत्रों से लिपट गये।

एहि बुलि पुत्र दुइको साबटि धरिला * शिर घ्राणि दुइहन्तरो मुखे चुमा दिला
कौशल्या सुमित्रा दुयो पुत्रक धरिया * करिला चुम्बन चक्षु सजल करिया ५६
अन्तःपुर माजत आछय यत प्राणी * स्नेहे सबे लोकर चक्षुर परे पानी
यात्रा लैया बाज भैला श्रीराम लक्ष्मण * दुइको लैला विश्वामित्र करिला गमन ५७
आग भैला ऋषिराज हरिष मनत * माजत चलिल राम लक्ष्मण पिचत
ऊर्ध्वमुखे चाहिया थाकिल सर्ब्बजन * रामर लगते गैल समस्तरे मन ५८
जइया परिल लोक बियोगे रामर * शुनि येन भैल सिटो अयोध्या नगर
श्रीरामर वियोगे आकुल भैल चित * सूर्य्य अस्ते गैले येन कमल मुदित ५९
चलि यान्त दुयो भाइ पिचत ऋषिर * गजेन्द्र जिनिया दुइरो गमन गम्भीर
येन शिशु सिंह लीलागति चलि यान्त * अमृत बरिषे येन यिदिशक चान्त ६०
सुरासुरे सेवा करे यार चरणत * येन राम चलि यान्त ऋषिर पिचत
परम कोमल पद गमन मधुर * आति सुकुमार तनु लावण्य प्रचुर ६१
रत्ने बिरचित शोभे पिठित चोखर * काषत खड्ग दुइरो हाते धनुशर
प्रकाशे शरीर रत्नमय अलंकार * देखन्ता लोकर मन हरन्त सबार ६२
परम हरिषे दुयो यान्त ऋषि संगे * आढ़ै प्रहरर पन्थ बहि गैला रंगे
रामर देखिया मुख हरिष ऋषिर * अनन्तरे पाइला गैया सरयूर तीर ६३
देखि रामचन्द्रर हरिष भैला मन * विश्वामित्रे बुलिलन्त रामक बचन
सरयू नदीर कथा शुनियोक राम * परम निर्म्मल जल तीर्थ अनुपाम ६४

मस्तक सूंघ कर दोनों के मुख का चुम्बन किया। कौशल्या और सुमित्रा ने दोनों को पकड़कर आँखों में आँसू भरकर उनका चुम्बन किया ॥ ८५६ ॥ अन्तःपुर में जितनी रानियाँ थी सभी की आँखें स्नेह से सजल हो उठीं। श्रीराम-लक्ष्मण यात्रा के लिए निकल पड़े। दोनों को लेकर विश्वामित्र चल पड़े ॥ ८५७ ॥ हर्ष भरे मन से ऋषिराज आगे बढ़े। बीच में राम चले और पीछे लक्ष्मण। सभी लोग ऊपर की (राम की) ओर मुँह किये रहे। सभी लोगों का मन राम के साथ-साथ गया ॥ ८५८ ॥ राम के वियोग से लोग मुरझा गये। सुन कर मानों अयोध्या नगर भी मुरझा सा गया। श्रीराम के वियोग से सबका चित्त इसी प्रकार व्याकुल हो गया जिस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल मुरझा जाता है ॥ ८५९ ॥ दोनों भाई ऋषि के पीछे चले जा रह हैं। दोनों की चाल गजराज की चाल से गंभीर है। मानों सिंह के शावक क्रीड़ा की चाल में चले जा रहे हों। जिस ओर भी वे ताकते अमृत बरसने लगता ॥ ८६० ॥ जिनके चरणों की सेवा सुर और असुर करते रहते हैं वही राम ऋषि के पीछे-पीछे चले जा रहे हैं। उनके चरण बड़े ही कोमल हैं और उनका गमन भी मधुर है। उनका तन अत्यन्त सुकुमार लुनाई से पूर्ण है ॥ ८६१ ॥ पीठ पर रत्न से बना तरकस शोभा पा रहा है, म्यान में तलवार और दोनों के हाथों में धनुष-बाण है। शरीर पर रत्नमय अलंकार झलमलाते हैं। वे दर्शन मात्र से लोगों का मन हर लेते हैं ॥ ८६२ ॥ बड़े ही आनन्द से दोनों ऋषि के साथ चले। ढाई पहर का रास्ता वे मजे में चले गये। राम का मुख देख कर ऋषि का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। अन्त में वे सरयू के तट पर जा पहुँचे ॥ ८६३ ॥ सरयू को देखकर रामचन्द्र का मन बड़ा हर्षमग्न हुआ। विश्वामित्र ने राम से कहा, राम, सरयू नदी के बारे में सुनो। इसका जल बड़ा ही निर्मल है और यह अनुपम तीर्थ है ॥ ८६४ ॥ तुम दोनों भाई सरयू के जल में स्नान करो। इससे तुम्हारी

करियोक स्नान दुयो सरयूर जले * बाढ़िबेक बल श्रम गुचिबे सकले
त्रिभुवन मध्ये राम पुरुष उत्तम * महाबलशाली हैबा बिपुल बिक्रम ६५
क्षुधा तृष्णा एरे ज्वर ब्याधि निपीड़िब * गुचिब आयास यशे जगत जुरिब
त्रैलोक्यर अधिपति तुमि से ईश्वर * इटो जगतर हैबा एक दंडधर ६६
ऋषिर बचन शुनि हरिष मनत * बिधिवते स्नानिलन्त सरयू जलत
ऋषियो करिला स्नान संध्या यत यत * बसिला तिनियो सेइ नदीर कूलत ६७
बुलिलन्त ऋषि रंगे रामक चचन * दिओँ महामंत्र बिद्या लैयो दुयो जन
याहाक जानिले श्रम गुचय सकल * होवे महाधनवन्त बाढ़े तेजबल ६८
एहि बुलि दुयो भाइत मंत्र कहिलन्त * त्रिभुवने सार बिद्या दुभाइक दिलन्त
मंत्र पाया दुयो भाइर हरिष मिलिल * ऋषि संगे रंगे तथा रजनी बंचिल८६९

ताड़का राक्षसी-बध

प्रभाते उठिया नित्य करि समापत * चलिला हरिषे दुयो ऋषिर संगत
सुललित लीलागति गमन सुथिर * कौतूहले पाइला गैया मन्दाकिनी तीर८७०
देखिया विचित्र एक स्थान अनुपाम * काहार आश्रम बुलि पुछिलन्त राम
ऋषिये बोलन्त इटो अनंग भुवन * मदनक एखाने दहिला त्रिनयन ७१
अनंग क्षेत्रक रंगे एराइ तिनि जने * ताड़कार बन गैया पाइला रंगमने
रामचन्द्र पुछिला ऋषिर चापि पाश * कहियोक मुनि इटो काहार निबास ७२

थकान दूर हो जायगी और शरीर में बल बढ़ेगा। हे राम, तुम तीनों भुवनों में सबसे उत्तम पुरुष हो। तुम विपुल विक्रमशाली और महाबली बनोगे॥ ८६५॥ इससे तुम्हारी भूख-प्यास मिट जायगी, हारी-बीमारी कष्ट नहीं देगी, थकान दूर हो जायगी और संसार भर में यश फैल जायगा। तुम त्रैलोक्य के अधिपति ईश्वर हो, तुम इस जगत् के एक दंडधर (राजा) बनोगे॥ ८६६॥ ऋषि का वचन सुनकर उन्होंने हर्षभरे मन से सरयू के जल में विधिवत स्नान किया। ऋषि ने भी स्नान और संध्या-जप आदि किया। तीनों उस नदी के तट पर बैठ गये॥ ८६७॥ ऋषि ने प्रसन्न हो राम से कहा, मैं तुम्हें महामंत्र विद्या देता हूँ, तुम दोनों उसे ग्रहण करो। जिसको जान लेने पर सारे श्रम दूर हो जाते हैं, इससे तुम महाधनवान् होगे और तेजबल भी बढ़ेगा॥ ८६८॥ यह कहकर दोनो भाइयों से उन्होंने मंत्र कहा। त्रिभुवन में सार विद्या उन्होंने दोनों भाइयों को दी। मंत्र पाकर दोनों भाई हर्षित हुए। ऋषि के साथ सानन्द उन्होंने वहाँ रात बिताई॥ ८६९॥

ताड़का राक्षसी का वध

सुबह उठकर नित्यकार्य समाप्त करने के उपरान्त ऋषि के साथ दोनों चल पड़े। उनकी सुन्दर चाल छन्द (स्वच्छन्दता) पूर्ण है और गमन सुस्थिर है। इस प्रकार वे मन्दाकिनी के तट पर जा पहुँचे॥ ८७०॥ एक अनुपम विचित्र स्थान देखकर राम ने पूछा, यह किसका आश्रम है। ऋषि ने कहा, यह कामदेव का नगर है। त्रिनयन शिव ने यहाँ मदन को भस्म कर दिया था॥ ८७१॥ अनंग के क्षेत्र से कतरा कर तीनों खुशी खुशी ताड़का राक्षसी के वन में पहुँच गये।

मुनिये बोलन्त राम शुना महायशी * एहिटो बनत थाके ताड़का राक्षसी
बिकट दशन ताइर रूप भयंकर * ब्राह्मण तपस्वी मारि खाइलेक बिस्तर ७३
यत लोक खाइले कोने लेखा करे ताक * त्रैलोक्यर लोक पाइले पारय खाइबाक
चोबाया गिलय माथा बृद्ध मानुहर * छवालर मुंडे ताइर कुंडल कर्णर ७४
मनुष्यर तेजे ताइर बदन पखाले * गावर कापोर ताइर मनुष्यर छाले
ताइर डरे नरे आउर इ पथे नायाय * आमि कोन पथे याइबो कहियो उपाय ७५
प्रहरेक लागे येवे याइ एइ पथे * तृतीय प्रहर लागे दक्षिणर पथे
जगरा एराया याओं मोर हेन मन * शुनि रामचन्द्रे हासि बुलिला बचन ७६
किसक इबोल बोला तुमि मुनिराज * चमु एरि दूर पथे याइबो कोन काज
लक्ष्मणक चाहि पाचे बुलिलन्त राम * स्त्रीबध हैबे पाप करो कोन काम ७७
लक्ष्मणे बोलन्त केने बोला हेन मत * पितृये पठाइ आछे ऋषिर लगत
मुनि यिवा बोले करिबाहा सेहि कर्म्म * गुरुर बचने किछु नाहिके अधर्म्म ७८
मुनि बुलिलन्त राम नकरिबा भय * राक्षसी मारिले किछु दोष नोपजय
बिस्तरक अपकार यिजने करय * नाहि दोष ताक मारि पुण्य से लभय ७९
मारीच सुबाहु दुई पुत्र ताड़कार * मारि मारि खाइल गरु ब्राह्मण अपार
ताड़का खाइल गरु मानुष बिस्तर * ताक मारि पाइबा राम पुण्य बहुतर ८०
शुनिया टंकार करिलेक रघुबरे * ताड़काक मारो आजि एकपाट शरे
मानुषर शबद शुनिया निशाचरी * क्रोधे खेदि आशे दिश अन्धकार करि ८१

ऋषि के निकट पहुँचकर रामचन्द्र ने पूछा, मुनि, यह बताओ कि यह किसका निवास है ॥ ८७२ ॥ मुनि ने कहा, हे महायशधारी राम, सुनो। इस वन में ताड़का राक्षसी रहती है। उसके बड़े विकट दाँत हैं और उसका रूप भयंकर है। उसने पर्याप्त संख्या में ब्राह्मण और तपस्वियों को मार-मार कर खा डाला है ॥ ८७३ ॥ न जाने कितने लोगों को उसने खा डाला, इसका हिसाब कौन रखता है। तीनों लोकों के लोगों को पा जाय तो यह खा सकती है। वृद्ध मनुष्यों के सिर यह चबा कर लील जाती है। बच्चों के मुंड इसके कर्ण के कुंडल हैं ॥ ८७४ ॥ मनुष्य के रक्त से वह अपना शरीर धोती है। मनुष्य का चमड़ा उसके शरीर के वस्त्र हैं। उसके डर से मनुष्य इस पथ से अब नहीं जाता है। बताओ अब मैं किस रास्ते से जाऊँ ॥ ८७५ ॥ इस रास्ते से जाने पर पहर भर लगेगा और दक्षिण के मार्ग से जाने पर तीन पहर लग जाएँगे। मेरा मन कहता है कि हम इस बखेड़े से कतरा कर चलें। यह सुनकर रामचन्द्र ने हँसकर कहा, ॥ ८७६ ॥ हे मुनिराज, किस कारण तुम ऐसा वाक्य बोल रहे हो। सीधा रास्ता छोड़कर दूर रास्ते से जाऊँ, यह कैसी बुद्धिमानी है। बाद में लक्ष्मण की ओर देखकर राम ने कहा, नारी का वध करने से पाप होगा, क्या करूँ ॥ ८७७ ॥ लक्ष्मण ने कहा, ऐसा क्यों बोलते हो। पिताजी ने ऋषि के साथ भेजा है। मुनि जो कुछ भी कहें वैसा ही काम करो। गुरु के वचन पालने पर कोई अधर्म नहीं होता ॥ ८७८ ॥ मुनि ने कहा, राम डरो मत। राक्षसी के मारने पर कोई भी दोष उत्पन्न नहीं होगा। जो भी प्रचुर अपकार करता है उसको मारने से दोष नहीं लगता, (बल्कि) पुण्य होता है ॥ ८७९ ॥ ताड़का के दो पुत्र सुबाह और मारीच ने असंख्य ब्राह्मण और गाय मार-मार कर खा डाले थे। ताड़का ने भी प्रभूत संख्या में गाय और ब्राह्मण मार-मार कर खाये थे। उसको मारकर हे राम, तुमको बहुत पुण्य प्राप्त होगा ॥ ८८० ॥

कर्णे लड़बड़ करे मुंड मानुषर * बदन प्रकटि आसे यम समसर
करे मड़मड़ गावे छाल मानुषर * पर्ब्बत समान घोर रूप भयंकर ८२
शाल बृक्ष सदृश मेलिया दुइ बाहु * सूर्य्यक ढाकिबे येन खेदि जाय राहु
रामक देखिया भीम तेजिला आटास * त्रैलोक्यर लोकत लागिल महात्रास ८३
सकल ब्रह्मांड जुरि प्रतिध्वनि गैल * बज्र परे बुलि सर्ब्बजन भय भैल
पाताल सदृश करि बेन्तगोट बाया * सबाके खाइबाक याय पृथिवी कम्पाया ८४
राक्षसीक देखि ऋषि महाभय भैला * रामर पिचत गैया आर हुया रैला
ऋषिक आश्वासि रामे जुरिलन्त बाण * ताड़कार हृदयत करिल सन्धान ८५
सरकिया बाण हियाते गैल पशि * घोर आटासेक दिया परिल राक्षसी
बज्रर प्रहार येन हृदये परिल * ताड़का तेजिल प्राण पृथिवी लरिल ८६
आकाशत आनन्द मिलिल देवतार * जय जय राम बुलि करय जोकार
रामर शिरत बरिषिल पारिजात * दुन्दुभि शवदे नाचे तुलि दुई हात ८७
दारुणी राक्षसी मरि गैला यमघर * रामर प्रसादे दुख खंडिल लोकर
राक्षस बधिबे प्रति भैला अवतार * प्रथमते रामे प्राण लैल ताड़कार ८८
देखि विश्वामित्रर हरष भैल मन * रामक बुलिला मुनि प्रशंसा बचन
धन्य धन्य राम तुमि पुरुष प्रधान * एकपात शरे राक्षसीर लैला प्राण ८९

यह सुनकर रघुवर ने धनुष में टंकार किया। ताड़का को आज एक ही बाण में मार गिराऊँ। निशाचरी (राक्षसी) ने मनुष्य की आहट पा ली तो दिशाओं को अन्धकारपूर्ण करती क्रोध से भागती हुई आई ॥ ८८१ ॥ उसके कान में मनुष्य के मुंड लटक रहे हैं। वह मुँह खोले आ रही है मानों स्वयं यम ही हो। बदन पर मनुष्य का चमड़ा खड़खड़ा रहा है। उसका रूप पर्वत के समान भयंकर है ॥ ८८२ ॥ वह शाल वृक्ष के समान दो हाथों को बढ़ाकर इस प्रकार आती है मानों सूर्य को ढकने के लिए राहु दौड़ रहा हो। राम को देखकर वह भीषण शब्द से चीख पड़ी जिसे सुनकर तीनों लोकों के लोगों में भयानक त्रास का संचार हो गया ॥ ८८३ ॥ उसके शब्द की गूँज सारे ब्राह्मांड भर में फैल गई। गाज गिर रही है यह समझकर सारे लोग भयभीत हो गये। ताड़का अपने मुँह को पाताल के समान खोलकर पृथ्वी को कम्पित करती हुई सभी को खाने दौड़ी ॥ ८८४ ॥ उस राक्षसी को देखकर ऋषि को बड़ा भय हुआ। वे राम के पीछे जाकर छिप गये। ऋषि को आश्वासन देकर राम ने धनुष पर बाण लगाया और ताड़का के हृदय पर निशाना साधा ॥ ८८५ ॥ धनुष से छूट कर वह बाण सीधे जाकर ताड़का के हृदय में घुस गया। भीषण चीत्कार कर वह राक्षसी गिर पड़ी; मानों हृदय पर वज्र का आघात आ पड़ा हो। ताड़का ने प्राण त्याग दिये और पृथ्वी काँप उठी ॥ ८८६ ॥ आकाश में देवताओं को आनन्द प्राप्त हुआ। वे जय-जय राम कहकर हर्षध्वनि करने लगे। राम के सिर पर पारिजात पुष्पों की वर्षा होने लगी। दुन्दुभि के के शब्द के साथ वे दोनों हाथ उठाकर नाचने लगे ॥ ८८७ ॥ इस प्रकार निर्दया राक्षसी मर कर यमालय चली गई। राम की कृपा से लोगों का दुःख दूर हुआ। राक्षसों का वध करने के लिए उन्होंने अवतार लिया। पहली बार राम ने ताड़का के प्राण ले लिये ॥ ८८८ ॥ यह देखकर विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए। मुनि ने राम की प्रशंसा की। हे राम, तुम धन्य हो, तुम पुरुषोत्तम हो। तुमने एक ही बाण में राक्षसी के प्राण ले लिये ॥ ८८९ ॥ हे राम, तुम्हारी ही कृपा से लोगों की दुर्दशा दूर हुई। हे राम!

गुचिल दुर्गति राम तोमार प्रसादे * हुयो चिरंजीव राम मोर आशीर्ब्बादे
तोमार निर्म्मल यश बाढ़ोक अशेष * अनन्तरे भैला आसि रजनी प्रवेश ९०
महासुखे सिटो राति बंचिला तथाते * रामक मातिला ऋषि उठिया प्रभाते
तोमार बिक्रमे राम तुषिला आमाक * नाना अस्त्र दिया मइ तुषिबो तोमाक ९१
मंत्रे समे ब्रह्म अस्त्र लैयो महाशय * दिबोहो बैष्णव अस्त्र त्रैलोक्य बिजय
रुद्रमंत्र समन्विते दिबो रुद्र शर * बज्रसाय समे अस्त्र दिबो बासवर ९२
शिखाइबो अग्निर बाण परम बिक्रम * लैयोक गरुड़ बाण आति निरुपम
शिखाओं गन्धर्ब्ब बाण बैरी क्षयंकर * संग्राम बिजयी बाण लैयो गन्धर्ब्बर ९३
शकति तोमार त्रिकंटक कनियाल * असि अर्द्धचन्द्र शेल शूल भिंडिपाल
खड़ खुर त्रिकुश विशाल टांगि भल्ल * परिघ पट्टिश गदा परशु मुषल ९४
हरित लोहित प्रास शतघ्नी कुलिश * व्याघ्रमुख नागपाश त्रिशूल निदुंश
कुबेर बरुण बाण स्तम्भन मोहन * लह अहिपत्र बायु बाण बितोपन ९५
लैयो निशाचक्र अस्त्र त्रिभुवने सार * चन्द्रसूर्य्य मंत्र अस्त्र शत्रु क्षयंकार
यम अस्त्र दिबो यमदंड समसर * शिखियोक दिव्य अस्त्र मंत्र निरन्तर ९६
असुर मानुष यक्ष रक्ष पिशाचर * शिखाइबो तोमाक माया मोह यत शर
स्नान करि आसि अस्त्र लैयोक एखने * शुनि राम लक्ष्मणे हरिष भैल मने८९७
स्नान करि ऋषिर आगत बसिलन्त * नाना अस्त्र शस्त्र मुनि दुइको शिखाइलन्त
बिश्वामित्र ऋषिर भैलन्त दुयो शिष्य * अस्त्र शिखि दुयो भाइ मनत हरिष८९८

मेरे आशीर्वाद से तुम चिरंजीवी हो। तुम्हारा निर्मल यश दिन प्रति दिन बढ़ता रहे। इसके बाद रात आ गई ॥ ८९० ॥ वहाँ बड़े आनन्द से वह रात बितायी गयी। सबेरे उठकर ऋषि ने राम से कहा, हे राम, तुमने अपने पराक्रम के द्वारा मुझको तुष्ट किया है, मैं विभिन्न अस्त्र देकर तुमको तुष्ट करूँगा ॥ ८९१ ॥ हे महाशय, तुम मंत्र सहित यह ब्रह्म अस्त्र लो। इसके अतिरिक्त मैं तुम्हें त्रैलोक्य विजय करने वाला वैष्णव अस्त्र भी दूंगा। रुद्रमंत्र समन्वित रुद्रबाण दूँगा। इन्द्र के वज्र जैसा अस्त्र दूँगा ॥ ८९२ ॥ परम पराक्रमी अग्निबाण भी सिखाऊँगा। अत्यन्त अनुपम गरुड़-बाण भी सिखाऊँगा। वैरियों का नाश करने वाला गन्धर्वबाण भी सिखाऊँगा। गन्धर्वों का संग्रामविजयी बाण सिखाऊँगा ॥ ८९३ ॥ शक्ति, तोमर, त्रिकंटक, कनियाल, असि, अर्धचन्द्र, शेल, शूल, भिंदिपाल, खंग, क्षुर (छुरा), त्रिकुश, विशाला-कार फरसा, भाला, परिघ, पट्टिश, गदा, परशु और मूसल भी सिखाऊँगा ॥ ८९४ ॥ पीला और लाल प्रास, शतघ्नी कुलिश, व्याघ्रमुख, नागपाश, त्रिशूल, निदुंश, कुबेर-बाण, वरुणबाण, स्तम्भन, मोहन, अहिपत्र तथा वायुबाण और वितोपन बाण भी सिखाऊँगा ॥ ८९५ ॥ त्रिभुवन में सार अस्त्र निशाचक्र लेना। शत्रु-क्षयकरी चन्द्र-सूर्य मंत्र वाला अस्त्र लेना। यमदण्ड के समान यम अस्त्र लेना। इस प्रकार दिव्य अस्त्रों (का प्रयोग) और मंत्रों को निरन्तर सीखना ॥ ८९६ ॥ असुर मनुष्य, यक्ष, राक्षस व पिशाचों के माया-मोह वाले सारे बाण सिखाऊँगा। स्नान करके यहाँ आकर अस्त्र लेना। यह सुनकर राम-लक्ष्मण मन ही मन बहुत खुश हुए ॥ ८९७ ॥ स्नान कर वे दोनों आकर ऋषि के पास बैठ गये। मुनि ने दोनों को विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग सिखाया। इस प्रकार वे दोनों विश्वामित्र मुनि के शिष्य बने। अस्त्र सीखकर दोनों भाई मन में बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८९८ ॥

चरित्र सकळ कहेजो रायनुं, पण मरण न कहेशो एव जी,
एम समश्यामां सूचवियुं पोते, गुरु समज्या ततखेव जी । ३५ ।
(पछे) यज्ञरक्षाथी मांडी कथा कही, रावणकुळ संहार जी,
दशरथ मरण विना गुण सघळा, गुरुए कर्या विस्तार जी । ३६ ।
त्यारे सुमित्राने पुत्र थयो, आवी वधामणी तत्काळ जी,
गुरु सहित मुनिमंडळ तेडी, आव्या त्या भूपाळ जी । ३७ ।
जातकर्म कुंवरनुं करियुं, आप्या बहुविधि दान जी,
तेणी समे केकैने प्रगट्या, सुंदर बे संतान जी । ३८ ।
अवधपतिने आनंद न माये, जाचकनां दुःख काप्यां जी,
जातकर्म कर्युं बे पुत्रनुं, दान अपरिमित आप्यां जी । ३९ ।
चारे पुत्र थया दशरथने, आनंद्या तेणी वार जी,
बार दिवस महा ओच्छव वरत्यो, अवधपुरी मोझार जी । ४० ।
त्रयोदशमे दिन वसिष्ठ मुनिए, जन्मपत्र कर लीधां जी,
चारे पुत्रनां विधिए करीने, नामकरण त्यां कीधां जी । ४१ ।

उस समय (जगत् के) नाथ (श्रीराम) ने आँखों से कूट (संकेत) करके गुरु को सूचित किया—राजा का समस्त चरित्र तो कहो, परन्तु (उनकी) मौत (के बारे में) न कहो। इस प्रकार उन्होंने स्वयं गुरु को (संकेत) सूचित किया, तो गुरु वसिष्ठ तत्क्षण उसे समझ गये। ३४-३५। तदनन्तर भविष्य कथन करते हुए गुरु ने (विश्वामित्र के) यज्ञ की रक्षा से लेकर रावण-कुल के संहार तक की कथा कही। दशरथ की मृत्यु की बात के सिवा, अन्य सभी गुणों का गुरु ने विस्तार किया—विस्तार-पूर्वक वर्णन किया। ३६। तत्पश्चात् सुमित्रा के पुत्र (उपत्न्न) हुआ। तत्काल बधाइयाँ आयीं। गुरु सहित ऋषि-मण्डली को बुलाकर राजा दशरथ वहाँ आ गये। ३७। (उन्होंने) कुमार का जातकर्म किया और बहुत प्रकार के दान दिये। उस समय कैकेयी के दो सुन्दर पुत्र (सन्तान) प्रकट (उत्पन्न) हो गये। ३८। अयोध्या-पति दशरथ का आनन्द (कहीं) समाता नहीं है (था)। (दान पाकर) याचकों के दुःख काटे गये (नष्ट किये गये)। (राजा ने) दोनों पुत्रों का जातकर्म किया और अपरिमित दान दिये। ३९। (इस प्रकार) दशरथ के चार पुत्र (उत्पन्न) हो गये। उस समय वे आनन्दित हो गये। अयोध्यानगरी में बारह दिवस महोत्सव सम्पन्न किया गया। ४०। तेरहवें दिन वसिष्ठ मुनि ने जन्म-पत्रिका हाथ में ली और तब चारों पुत्रों का विधिवत् नामकरण किया। ४१। कौशल्या का पुत्र वस्तुतः

वैकुंठवासी कौशल्या-सुत, नाम तेनुं श्रीराम जी,
शेषतणो अवतार सुमित्री, लक्ष्मण एवुं नाम जी । ४२ ।
केकैना बे पुत्र ते हरिना शंख-चक्र अवतार जी,
भरत शत्रुघन नामज पाड्यां, गुण बळ तेज अपार जी । ४३ ।
एम चार पुत्रनां नाम ज पाड्यां, गुरुए तेणी वार जी,
श्रीराम लक्ष्मण भरत शत्रुघन, वरत्यो जयजयकार जी । ४४ ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

जयजयकार थयो अवधपुरमां, दशरथ हरख्या अति घणुं,
श्रोताजन सहु सांभळो, कहुं बाळचरित्र राघव तणुं । ४५ ।

* * *

वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु थे, उसका नाम 'श्रीराम' हुआ। सुमित्रा का पुत्र शेष भगवान् का अवतार था। उसका नाम 'लक्ष्मण' था। कैकेयी के दोनों पुत्र श्रीविष्णु के शंख और चक्र के अवतार थे। गुण और बल में जो अपार (असीम) थे, ऐसे उन दोनों को भरत और शत्रुघ्न नाम दिये गये। ४२-४३। इस प्रकार उस समय गुरु ने चारों पुत्रों के नाम रखे—श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न; तो जय-जयकार हुआ। ४४।

अयोध्यानगर में जय-जयकार हुआ, तो दशरथ अत्यधिक आनन्दित हुए। हे श्रोताजनो, तुम सब सुनो—मैं श्रीराम का बाल-चरित्र कहता हूँ। ४५।

* * *

अध्याय–१७ (रावण का भयभीत होना)

राग आशावरी

श्रीरामचरित्र कथारस अमृत, पावन सुखद अपार,
जे आदरे श्रवण करे नहि, तेनी बुद्धिने धिक्कार । १ ।

अध्याय–१७ (राग आसावरी)

श्रीराम-चरित्र की कथा का रस (मानो) अतीव पावन और सुखदायी अमृत है। जो उसका आदरपूर्वक श्रवण नहीं करते, उनकी बुद्धि को

वक्ता विवेकी बृहस्पति जेवा, मूरख श्रोता होय,
तो व्यर्थ कथा जाये ते सादर, श्रवण करे नहि कोय । २ ।
वक्तानी वाणी मिथ्या ज्यम, उज्जड वनमां रुदन,
सुख दुःख तेने कोई न पूछे, एम श्रोता मूरख जन । ३ ।
जेम खटरस भोजन भात्यभात्यनां, जमनारो रोगिष्ठ,
स्वाद कशो रुचे नहि तेने, धर्मशास्त्र पापिष्ठ । ४ ।
जन्मअंधने दर्पण जेवुं, कागने अमृत आहार,
ऊंटने रंभाफळनुं भोजन, शूकर ने धनसार । ५ ।
एम श्रोता मूरख देखीने, थाय सरस्वतीने संताप,
राजकन्या ज्यम पद्मनी सुंदर, षंढने दीधी आप । ६ ।
ज्यम पतिसेवामां जारणी रहे नहि भग्न पात्रमां नीर,
एम मूरखना रुदेमांहे हरे नहि, रामकथा गंभीर । ७ ।
कविता सिंधुमां अर्थ रत्न ते, नव जाणे मतिमंद,
ज्ञाता भगवती ए रस जाणे, जे काव्य कथा नभ चंद । ८ ।

धिक्कार है । १ । वक्ता (कथा कहनेवाला) विवेकवान बृहस्पति जैसा हो—और यदि श्रोता मूर्ख हो, तो चूँकि कोई उसका आदरपूर्वक श्रवण नहीं करता, वह कथा (कथन) व्यर्थ हो जाती है २ । यदि श्रोताजन ऐसे मूर्ख हों कि कोई उससे सुख-दुःख पूछते नहीं, तो वक्ता की वाणी उस प्रकार मिथ्या अर्थात् व्यर्थ होती है, जैसे उजाड़ वन में (किसी का) रुदन (निष्फल) होता है । ३ । जैसे भाँति-भाँति का षड्-रस (छहों रसों से युक्त) भोजन (बनाया हुआ) हो, परन्तु भोजन करनेवाला रोगी हो, तो उसे किसी (भी) पदार्थ का स्वाद अच्छा नही लगता, वैसे ही (मूर्ख को रामकथा का वर्णन श्रवण करने में कोई आनन्द नहीं आता ।) पापी को धर्मशास्त्र अच्छा नहीं लगता । ४ । जन्मान्ध को दर्पण (दिखाना), कौए को अमृत (के समान मधुर) आहार (कराना), ऊँट को केले (के फल) का भोजन (कराना), और सूअर को कपूर (खिलाना जैसे व्यर्थ) है । (वैसे ही मूर्ख श्रोता को रामकथा का वर्णन सुनाना निरर्थक है) । ५ । ऐसे मूर्ख श्रोता को देखकर (वाणी की देवी) सरस्वती को सन्ताप (अनुभव) होता है । (ऐसे मूर्ख श्रोता को किसी ने रामकथा सुनायी हो तो यह मानो ऐसा हुआ कि किसी ने स्वयं पद्मिनी सुन्दर राजकन्या षण्ढ (नपुंसक) को प्रदान कर दी । ६ । जैसे जारिणी (बदचलन स्त्री) पति की सेवा में नहीं (लगी) रहती, अथवा टूटे पात्र में पानी नहीं रहता, वैसे ही मूर्ख के हृदय में गम्भीर (अर्थ से युक्त) रामकथा नहीं ठहरती । ७ । कविता

ते माटे श्रोताजन सुणजो, सादर श्रद्धा सहित,
श्रीपुरुषोत्तम दशरथ घरे प्रगट्या, पुरमां हरख अमित । ९ ।
श्रीरामजन्मथी सकळ विश्वमां, वरत्यो जयजयकार,
एक लंकामांहे शोक पड्यो, धराकंप थयो तेणीवार । १० ।
सिंहासन दशानन बेठो, भांगी पड्युं तव छत्र,
मुगट खसी पड्या शीशविषेथी कंप्यो रावण तत्र । ११ ।
त्यारे आदर्शमां अवलोक्युं रावणे, दीठां नहि दशमुख,
एवां मान शुकन जोईने मतिमंद, पाम्यो मनमां दुःख । १२ ।
मंदोदरीने स्वप्न ज आव्युं, पामी घणो परिताप,
जाणे सहित सुलोचना अंग पोतानुं, विधवा दीठुं आप । १३ ।
राणीए स्वप्ननी वात कही त्यारे, बोल्यो रावण वाण,
दैव जे ईश्वर आपणी उपर, कोप्या निश्चे जाण । १४ ।
जेनी उपर दैव कोपे तेने, थाय विघ्न अनेक,
क्षीण पामे वळ पोतानुं, थाय वेरीनुं बळ विशेक । १५ ।

(–काव्य) रूपी समुद्र में (महान्) अर्थ रूपी रत्न होता है। उसे मन्द बुद्धिवाला मनुष्य नहीं समझता। जो काव्य-कथा रूपी आकाश का चन्द्र है, ऐसा ही कोई ज्ञानी भक्त उस काव्य रस (के मर्म) को समझता है। ८। इसलिए हे श्रोताजनो, (यह रामकथा) आदर और श्रद्धा के साथ सुनो। श्रीपुरुषोत्तम श्रीराम दशरथ के घर प्रकट हो गये। (इससे) नगर में असीम आनन्द हो गया। ९। श्रीराम के जन्म के कारण समस्त विश्व में जयजयकार हो गया। (केवल) एक लंका में शोक छा गया। उस समय (वहाँ) भूचाल हो गया। १०। दशमुख (रावण) सिंहासन पर बैठा (हुआ था), तब उसका छत्र टूट पड़ा। मस्तक पर से मुकुट खिसक कर गिर पड़े, तो रावण काँप उठा। ११। तब रावण ते आईने में देखा, तो उसमें (उसने अपने) दस मुख (प्रतिबिम्बित) नहीं देखे (उसे नहीं दिखायी दिये)। तब ऐसे अपशकुन देखकर वह मन्दमति रावण मन में दुःख को प्राप्त हो गया। १२। मन्दोदरी को स्वप्न ही देखने में आया, उससे उसे बहुत ग्लानि हो गयी। उसने (इन्द्रजित की पत्नी) सुलोचना सहित अपने शरीर को विधवा (के शरीर के रूप में) देखा। १३। रानी (मन्दोदरी) ने (जब) स्वप्न की बात कही, तब रावण ने यह बात कही—यह निश्चय समझो कि दैव, जो ईश्वर (ही) है, हमारे ऊपर क्रुद्ध हो गया। १४। जिसके ऊपर दैव कुपित होता है, उसके लिए अनेक विघ्न (उत्पन्न) हो जाते हैं। वह अपने बल को क्षीण

ते लाभ जाणी उद्यम करे, पण आवे तेमां हाण,
विजय ठामे पराजय पामे, वहालां वेरी थाय जाण । १६ ।
आपणुं राज त्रिया ने संपत्ति, गज रथ वाहन जेह,
ते शत्रु भोगवे आपण जोइए दैव रूठ्यौ होय एह । १७ ।
जे लख्युं हशे ते थशे सुन्दरी, सुख दुःख करम समान ।
माटे चिंता शाने करे छे ? हुं छुं महा बळवान । १८ ।
पछे प्रधान प्रत्ये रावण कहे छे, साचवो नग्र ने राज,
रातदिवस सावधान रहो, कोई शत्रु उदे थयो आज । १९ ।
ए रीते आगम जणाव्युं, बीन्यो रावण राय,
हवे अवधपुरीमां दिन दिन अदको आनंद उत्सव थाय । २० ।
रामजन्म सुखमंगलकारी, निरभे लोक प्रसन्न,
माग्या मेह वरसे वसुधातळ, पाके छे घणुं अन्न । २१ ।
वृक्ष सदा अमृतफळ आपे, त्रिकाळ दूझे धेनु,
व्याधि दरिद्र न चिंता कोने, थाय नहि दुःख देहनुं । २२ ।

हुआ पाता है, (और उसके) शत्रु का बल विशेष (बढ़ा हुआ) हो जाता है । १५ । वह लाभ (होगा ऐसा) समझ कर उद्योग करता है, परन्तु उसमें उसकी हानि हो जाती है । विजय के स्थान पर उसे पराजय (प्राप्त) होती है । (यह) समझो, (कि उसके) प्रिय जन शत्रु हो जाते हैं । १२ । हमारा राज्य, स्त्रियाँ और सम्पत्ति, हाथी-रथ जो भी वाहन हों, उनका भोग शत्रु करता है और हम देखते (रहते) हैं । तो (समझो कि) दैव रूठा हुआ होता है । १७ । जो (भाग्य में) लिखा होगा, वह होगा । हे सुन्दरी ! सुख-दुःख (अपने-अपने कर्म के अनुसार (होता) है । इसलिए चिन्ता क्यों करती हो ? मैं महाबलवान हूँ । १८ । अनन्तर रावण मंत्रियों से कहता है—नगर और राज्य की रक्षा करो । रात-दिन सावधान रहो । आज कोई शत्रु उदित (उत्पन्न) हुआ (है) । १९ । इस प्रकार (राम का) जन्म हुआ जाना, (तो) राजा रावण भयभीत हुआ । (परन्तु इधर) अयोध्या नगरी में अब प्रतिदिन बहुत आनन्दोत्सव सम्पन्न होता (रहता) है । २० । श्रीराम का जन्म सुख और मंगल का कर्ता है । (उससे) लोग निर्भय और प्रसन्न हैं । माँग (आवश्यकता) के अनुसार धरा-तल पर मेघ बरसते हैं; विपुल अनाज उत्पन्न होता है । २१ । वृक्ष सदा अमृत (के समान मधुर) फल देते हैं । गाय तीनों काल (सुबह, दुपहर और शाम को) दूध देती है, किसी को व्याधि (बीमारी), दरिद्रता नहीं है, न किसी को देह का (शारीरिक) दुःख

स्वरूप सुन्दर नरनारीनां, मूढ थया विद्वान,
चारे वर्ण धर्म निज पाळे, भूपति ईन्द्र समान । २३ ।
कौशल्या उदयाचळमां ज्यारे, ऊग्यां दिनमणि राम,
तस्कर उलूक ते अंध थया, मूक्यां जार चोरीनां काम । २४ ।
वेदांत शास्त्र करीने सर्वे, मतनो थाये छेद,
विषयासक्ति टळे सहु ज्यारे, प्रगटे दृढ निर्वेद । २५ ।
एम रामजन्मथी काम क्रोध मद, अन्या अधरम जेह,
शोक दुःख दुष्काळ दोष सहु, नाश थया छे तेह । २६ ।
द्वितीयाचंद्रनी पेरे दिन दिन, वृद्धि पामे कुमार,
मातापितानी आँख ठरे, जोई हरखे छे नरनार । २७ ।
कनकमणिना पारणामांहे, चारे पुत्र झुलावे,
हरखे हालरुं गाती माता, हेत करीने हुलावे । २८ ।
अनेक नारीओ आवे नगरनी, झुलावे करीने हेत,
न्योछावर करी लेती ओवारणां, भक्ति प्रेम समेत । २९ ।

है । २२ । नर-नारियों का रूप सुन्दर है, मूढ़ लोग विद्वान हो गये । चारों वर्णों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं । (अयोध्या के) राजा (दशरथ) इन्द्र के समान हैं । २३ । जब कौशल्या रूपी उदय-गिरि पर राम रूपी सूर्य का उदय हुआ, तो चोर रूपी उल्लू अन्धे हो गये; उन्होंने जार-कर्म (व्यभिचार) और चोरी का काम छोड़ दिया । २४ । सब (लोग) वेदान्त-शास्त्र (का अध्ययन) करने से सब (अन्य) मतों का खण्डन हो जाता है । जब सब में विषयासक्ति टल जाती है, तो दृढ़ शान्ति का भाव प्रकट हो जाता है । २५ । इस प्रकार राम के जन्म (के दिन) से काम, क्रोध, मद तथा जो अन्य अधर्म (कारी) विकार हैं, शोक, दुःख, अकाल—सब दोष नष्ट हुए हैं । २६ । प्रतिदिन वे कुमार द्वितीया के चन्द्र की भाँति विकसित होते (रहते) हैं । (उन्हें देखकर) माता-पिता की आँखें ठण्डी (प्रसन्न) हो जाती हैं । और (यह) देखकर पुरुष और स्त्रियाँ आनन्दित हो जाते हैं । २७ । सोने और रत्नों के पालनों में चारों पुत्रों को झुलाते हैं । लोरी गाते हुए माताएँ आनन्दित होती हैं और प्रेमपूर्वक वे लाड़-प्यार करती हैं । २८ । नगर की अनेक स्त्रियाँ (वहाँ) आती हैं और प्रेमपूर्वक (उन्हें) झुलाती हैं, भक्ति और प्रेम के साथ (अमंगल के निवारण के हेतु) निछावर करते हुए बलैया लेती हैं । २९ । श्रीरामचन्द्र के मुख को देखकर स्त्रियाँ आशीर्वाद देती हैं—हे कौसल्याजी, तुम्हारा पुत्र करोड़ों वर्ष जीवित रहे । ३० । कुमार

श्रीरामचंद्रनुं मुख नीरखीने, देती त्रिया आशिष,
कौशल्याजी पुत्र तमारो, जीवजो क्रोड वरीष । ३० ।
कुंवरने कर्णवेध कृत्य कीधुं, सरवे पाम्यां सुख,
उछंग लेई पयपान करावे, जननी जोती मुख । ३१ ।

वलण (तर्ज़ बदल कर)

मुख जोई सुख पामे दशरथ, चारे पुत्र रतंन रे,
लाड लडावे कुंवरने, कौशल्या हरखे मंन रे । ३२ ।

* * *

राम की कर्ण-वेध नामक विधि (सम्पन्न) की, तो सबको सुख प्राप्त हुआ। माता (कौशल्या) उसे गोद में लेकर दूध पिलाती है और उसके मुख को देखती है । ३१ ।

चारों पुत्र मानो रत्न हैं, दशरथ उनके मुख देखकर सुख प्राप्त करते हैं। कौशल्या पुत्र को लाड़ लड़ाती है और मन में आनन्दित होती है । ३२ ।

* * *

अध्याय-१८ (श्रीराम का बालचरित्र)

राग वेलीनो ढाळ

श्रीरामकथा जश निर्मळ छे पुण्य पवित्र जी,
जथामातिए करी गाउं ते बाळचरित्र जी । १ ।
प्रभु खट मासना थया झूले छे पारणे,
सातसें राणीओ आवे झुलावा कारणे । २ ।

अध्याय-१८ (श्रीराम का बालचरित्र)

श्रीराम की कथा की कीर्ति निर्मल तथा शुभ एवं पवित्र है। मैं (अपनी) बुद्धि के अनुसार उस (श्रीराम के) बाल-चरित्र (लीला) का गान करता हूँ । १ । प्रभु राम छः महीने के हुए। (एक दिन) वे पालने में झूलते (झुलाये जाते) हैं (थे)। उसे झुलाने के हेतु से सात सौ रानियाँ आती हैं । २ । वे (अपने) मुख-कमल में अंगूठा डालकर

मेली मुखकमळमां अंगूठो धावता,
कीलकी हुंकार करी माताने बोलावता । ३ ।
आवी ऋतु शरदकेरी पूनमनी रातडी,
करी एक कौतुकलीला तेनी कहुं बातडी । ४ ।
चोकमां पारणुं मूकी सुवाड्या रामने,
माता हालो गाय झुलावे पूर्णकामने । ५ ।
तेवे समे चंद्रमा ऊग्यो, दिशाओ दीपावतो,
कळाओ पूर्ण किरणे, जनमन भावतो । ६ ।
तेनुं प्रतिबिब पड्युं सुतमुख हेजमां,
जाणे बीजो चंद्रज उदे थयो थंभ तेजमां । ७ ।
सामसामी चंद्र देखाया तेज एक तारमां,
कौशल्याए कौतुक दीठुं, पड्यां छे विचारमां । ८ ।
आ ते शुं चेटक हशे के मने स्वप्न थयुं,
बदन विधु देखायो, मुख एनुं क्यां गयुं ? । ९ ।
एवे त्यां भूपति आव्या आनंद न माय जी,
मुखमां चंद्र दीठो, विस्मय थया राय जी । १० ।

चूसते । किलकारी और हुँकार देकर वे माता को बुलाते । ३ । शरद् ऋतु की पौर्णिमा की रात आयी । (श्रीराम ने) एक कौतुक-लीला की, मैं उसकी बात कहता हूँ । ४ । आँगन में पालना डालकर राम को सुलाया (और) माता लोरी गाते हुए पूर्णकाम राम को झुलाती है । ५ । उस समय दिशाओं को प्रकाशित (उज्ज्वल) करता हुआ चन्द्र उदित हुआ । कलाओं से पूर्ण वह (चन्द्र) किरणों से जनमानस को अच्छा लगता रहा । ६ । उसका प्रतिबिम्ब पुत्र के स्निग्ध मुख में पड़ा । जान पड़ता है (था), दूसरा चन्द्र (ही) तेज के स्तम्भ के रूप में उदित हो गया । ७ । सामने-सामने तेज के एक तार में बँधे हुए (दो) चन्द्र दिखाई पड़े । कौशल्या ने (यह) कौतुक (अद्भुत बात) देखा, तो वे सोच में पड़ गयी हैं । ८ । यह क्या भूत-पिशाच (का चमत्कार) होगा या मुझे स्वप्न देखने में आया ? (वह) मुख (तो) चन्द्र दिखायी दिया । (फिर) इसका मुख कहाँ गया ? । ९ । तब (वहाँ) राजा आये । आनन्द (उनके मन में) समाता नहीं । (श्रीराम के) मुख में (के स्थान पर जब) चन्द्र देखा, तो राजा विस्मित हो गये । १० ।

नन्नु वरिंपुडु नलिनाक्षुलार ! । चेन्नार नमरत्वसिद्धि गैकोनुडु;
अन्नडु जरलेनि येलजव्वनंबु । नुन्नतयशमु मी कोप्पारगलुगु''
ननिन नल्लन नव्वि 'यनिलुंड! सकल । जनहृदयंबुल जरियितु वीवु;
नी वेरुंगवे मम्मु? नी महत्त्वंबु । भाविंपकिदियेमि पलिकेद वकट९७०
नियतुडै वर्तिचु निर्मलधर्म । नयशीलुडगु कुशनाभु कूतुलमु;
ओडक मा तंड्रि युंड मायंत । गूडुने यिटु सेय ? गुलहानिगादे ?
यिरवार मा तंड्रि येव्वरिकिच्चु । बरिकिंप नातडे पति माकु' ननिन
बवनुडु गोपंबु पट्टलेकप्पु । डवयवंबुल जोच्चि या तलोदरुल
गुदियंग दिविचिन गुब्जलै तंड्रि । कदियेल्ल नेरिगिंप नंदरु वच्चि
विन्ननि वदनारविंदमुल् वांचि । सन्निधिनिलिचि बाष्यमुलु निंचुटयु
गुशनाभुडप्पुडाकूतुलकैन । दश जूचि वेरगंदिता वारिकनियें;
'निट्टिरूपमुलु मीकेलनागलार ! । येट्टु वाटिलें? नेव्वडिटु सेसेमिम्मु?
मीरेल पलुकरु ? मीकिंत केमि । कारणं ?' बनवुडु गरमुलु मोगिचि
तमतंड्रि तोड ना धवळाक्षुलनिरि । 'ममु जूचि पवनुंडु मानंबु
विडिचि ९८०

आप को शोभायुक्त रूप से जरा-हीन नवयौवन (और) उन्नत यश प्राप्त होगा।' ऐसा कहने पर, (वे) मुस्कुरा कर बोलीं—'हे अनिल! तुम सब के हृदयों में संचार करते हो। (फिर भी) तुम हमें नहीं जानते हो ? अपने महत्त्व के बारे में सोचे बिना हाय, यह क्या कह रहे हो ? ॥ ९७० ॥
—(हम) नियम के अनुसार आचरण करने वाले निर्मल-धर्म तथा नीतिशील कुशनाभ की पुत्रियाँ हैं। पराभूत हुए बिना हमारे पिता के रहते, हम स्वयं ऐसा (तुम्हें वरण) कैसे कर सकेंगी ? (इससे क्या) कुल-हानि (वंश का अपमान) नहीं होगी ? स्थिरभाव से हमारे पिताजी हमें जिसे देंगे (जिसके साथ विवाह करेंगे), विचार कीजिए वही हमारा पति होगा।' ऐसा कहने पर पवनदेव (अपने) क्रोध को दबा न सके। तब उन तलोदरियों (तरुणियों) के अवयवों में प्रवेश कर, (उन्हें) ह्रस्वीकृत करने पर, वे कुब्जाएँ हो गईं। पिता को वह सब बताने के लिये जाकर, खिन्न बने वदन-अरविन्दों (मुख-कमलों) को झुकाकर, (पिता के) समक्ष खड़े हो, उन्होंने आँखें भर लीं (आँसू बहाने लगीं)। कुशनाभ ने तब उन पुत्रियों को प्राप्त दशा देख स्तम्भित हो, स्वयं उनसे कहा—'हे युवतियो ! ऐसे रूप तुम्हें कैसे प्राप्त हुए ? किसने तुम्हारे साथ ऐसा किया ? तुम लोग बोलती क्यों नहीं हो ? ऐसा होने का क्या कारण है ?' ऐसा कहने पर हाथ जोड़कर, अपने पिता से वे धवलाक्षियाँ (सफ़ेद नेत्रों वाली इस प्रकार)

'नन्नु वरिंपुडु नलिनाक्षुलार!' । यन्नना माटकु 'नौगाक' यनक
'मा तंड्रि नडुगु मी माट नी'वनिन । नातंडु कामांधुडै यलिग मम्मु
गुब्जलगा जेसे ग्रूरात्मु'डनिन । नब्जलोचनलतो नातडिट्लनियें ;
'दगवुनु धर्मंबु दलपोसि मीरु । तगदनि शीलंबु दाट नोडितिरि ;
कन्नियलार! मी गौरवंबुननु । नुन्नत सत्कीर्ति नौन्दे ना कुलमु ;
देवताविषयमै तेंगि यल्गरैति । रीविधि मीरु सहिंचुटे लेस्स ;
क्षमयें सत्यंबुनु, क्षमयें शीलंबु । क्षमयें तपंबुनु, क्षमयें कीर्तियुनु
क्षमयें धर्मंबुनु, क्षमयें लोकंबु । नमरंग रक्षिंचु' ननि वारि बंचि
तन मंत्रिवरुलतो दग विचारिंचि । यनघात्मुडगु चूळि यनु मुनींद्रुनकु
९८९

विश्वामित्रुनि वंशक्रममु

दनुजन्मुडगु गुणोत्तरु ब्रह्मदत्तु । ननुवार रप्पिंचि या महात्मुनकु
९९०

बोलीं—'हमें देखकर पवन ने लज्जा त्याग कर, (निर्लज्ज बन)—॥ ९८० ॥
—कहा 'हे नलिनाक्षियो! मेरा वरण करो' (तो) हमने उसकी बात को स्वीकार नहीं किया और कहा 'यह बात तुम हमारे पिता से पूछो'। तब कामान्ध हो, क्रुद्ध उस क्रूर-आत्मा वाले (निर्दयी) ने हमें कुब्जाएँ बना दिया।' ऐसा कहने पर उसने (कुशनाभ ने), उन अब्जलोचनाओं (कमलनेत्रियों) से कहा—'न्याय और धर्म का ध्यान रखकर, अनुचित समझकर, तुम लोगों ने अपने शील को खोना नहीं चाहा। हे कन्याओ! तुम्हारे गौरव (पूर्ण कार्य) से मेरा वंश उन्नत एवं सत्कीर्ति को प्राप्त हुआ। देवता के विषय में, साहस करके तुम लोग क्रुद्ध नहीं हुईं। इस प्रकार तुम लोगों का सहन कर जाना ही उत्तम है। क्षमा ही सत्य है, क्षमा ही शील है, क्षमा ही तप है, क्षमा ही कीर्ति है, क्षमा ही धर्म है। क्षमा ही प्रीति से (समुचित रूप से समस्त) लोगों की रक्षा करता है।' ऐसा कहकर (सान्त्वना देकर) (राजा ने) उन्हें भेज दिया (विदा किया)। (तब) अपने श्रेष्ठ मंत्रियों से उचित रीति से विचार कर, अनघात्मा (पुण्यात्मा) हो चूली नामक मुनिवर के ॥ ९८९ ॥

विश्वामित्र का वंशक्रम

—पुत्र, गुणोत्तम (गुणों में श्रेष्ठ) ब्रह्मदत्त को समुचित रीति से निमन्त्रित किया। उस महात्मा को ॥ ९९० ॥

धर्मपत्नुलु गाग दनदु कन्नियल । निर्मल बुद्धिमै नेम्मि निच्चुटयु
जूळि पुत्रुडु वारि जूचि कैकोनग । व्रीलें ना नूर्वुर विकृतरूपमुलु:
अवनीश ! यदि मोदलापुरोत्तममु। ननिन गन्याकुब्जमनु पेर बरगे ।
ना कुशनाभुंडु नप्पुडोप्पारु । नाकृतुल् गल तनयुल गनुंगोनुचु
नलरिया कूतुल नल्लुनि ननिचि । येलमिमै बुत्रकामेष्टि गाविप
गोडुकैन कुशनाभु गुशुडु वीक्षिंचि । पडसेदु पुत्रुनि बरमधार्मिकुनि
विनुत निर्मल कीर्तिविख्यातु गाधि। यनुपेरु गल पुण्यु ननि येरिगिंचि
परम प्रियंबुन ब्रह्मलोकमुन । करिगे ना कुशु मन्मडै गाधि वुट्टे
दशरथात्मज ! गाधितनयुंड नेनु । गुश वंशमनि कौशिकुंडंड्रु नन्नु;
मति धर्मनिष्णात मा यक्क सत्य । वति भक्तिमै सुरेश्वर लोकमुनकु
१०००

वेडुक दन प्राणविभुडैन रुचिकु । तोड शरीरंबुतोड दा नरिगि
यी लोकमुन लोकहितमाचरिंप । ब्रालेय पर्वत प्रान्त देशमुन
नलि गौशिकी नामनदि यय्ये दानु । वेलय नन्नदि चेन्त विहरिंतु नेनु
सिद्धाश्रममु ब्रवेशिंचिन कतन । सिद्धंबुगा दपस्सिद्धुंडनैति

निर्मल बुद्धि और प्रेम के साथ अपनी कन्याओं को धर्मपत्नियों के रूप में प्रदान किया। चूली-पुत्र के उन्हें देखकर स्वीकार करने पर, उन सौ (कन्याओं) के विकृत रूप दूर हो गये। हे अवनीश (राजा) ! तब से लेकर वह श्रेष्ठ नगर, (इस) अवनि पर कन्याकुब्ज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह कुशनाभ तब सुन्दर आकृतियों से युक्त पुत्रियों को देखकर प्रसन्न हुए (और) उन पुत्रियों को (तथा) जामाता को विदा कर, हर्ष के साथ पुत्र-कामेष्टि किया। (तब अपने) पुत्र कुशनाभ को देखकर कुश बोले—'परमधार्मिक, विनुत (प्रख्यात) निर्मलकीर्तिविख्यात गाधि नामक पुण्यात्मा को पुत्र रूप में तुम प्राप्त करोगे।' ऐसा बताकर परमप्रिय भाव से वे (कुश) ब्रह्मलोक को गए। उस कुश के पौत्र होकर गाधि पैदा हुए। हे दशरथात्मज ! मैं गाधितनय हूँ। कुशवंश में होने से मुझे कौशिक (भी) कहते हैं। अति-धर्मनिष्णाता हो मेरी बड़ी बहन सत्यवती भक्ति के कारण, सुरेश्वरलोक (स्वर्ग) को, ॥ १००० ॥

—हर्षयुक्त हो, अपने प्राणविभु (पति) रुचिक के साथ सशरीर गई। इस लोक में लोकहित करने (की भावना से) के लिए, प्रालेय (हिम) पर्वत-प्रान्त-देश में, समुचित रूप से, स्वयं कौशिकी नामक नदी बन गई। शोभायमान उस नदी के पास मैं विहार करता हूँ। सिद्धाश्रम में प्रवेश करने के कारण वास्तव में मैं तपःसिद्ध हुआ हूँ। आदि से मेरे वंश की

नादिनुंडियु मदीयान्वयस्थितियु । नीदेशविधमुनु नेर्पडविंटि
नडुरात्रियरुदेन्चे नरलोकनाथ ! । कडु डस्सिनाडवु कनुमोड्तु गाक
चलियिंपकुन्नवि सकल वृक्षमुलु । मेलगवु वनभूमि मृगसमूहमुलु
नेरि विहंगमुलु नीडमुल् सेरि । मरचियुन्नवि तम मंजुल ध्वनुलु
यामिनी चरुलैन यक्षराक्षसुलु ।भूमि विच्चलविडि बोरि चरिंचेदरु
दीटुगा जीकटि देसलु नाकसमु । गाटुक बूसिन करणि नुन्नदियु ;
१०१०
नीलांबरंबुन निंडु मुत्तेमुलु । गीलिंचि ब्रह्मांड गेह गोळमुन
गडु नोप्पुगा मेलुकट्लेत्तिनट्टु । लुडुगणंबुलतोड नुन्नदि निंगि ;
यडरंग जनुलकु नानंदमोदव । नुडुराजु वोडतेन्चुचुन्ना'डटन्न
ना माटलकु मेच्चि यखिलसंयमुलु। ना मुनींद्रुनितोड ननिरप्पुडलरि;
"नेरय नी वंशंबु निर्मलंबनघ! । गुरिलेनि महिम नी कुलमु वारेल्ल
ब्रह्मसमानुलु परिकिंप; नीदु । ब्रह्मवर्चसमुनु ब्रणुतिंप नोप्पु ;
ना कौशिकियु नी निजान्वयंबुनकु। दीकोनि ता वन्नेदेच्चे नी जगति"

स्थिति (और) इस (प्र) देश के बनने के सम्बन्ध में यह (वृत्तान्त) सुना है। हे नरलोकनाथ ! आधीरात हो गई है। बहुत थक गए हो (तुम), (अतः) आँखें मूँद लो (सो जाओ)। सभी वृक्ष अचल हो गए हैं (हिल नहीं रहे हैं), वनभूमि में मृगसमूह विचरण नहीं कर रहा है, सुन्दर विहंग (अपने-अपने) नीड़ों में पहुँचकर, अपनी मंजुल-ध्वनियों को भूले हुए हैं, यामिनी (निशा–) चर यक्ष (और) राक्षस स्वेच्छा से (स्वच्छन्द होकर) विचरण करेंगे, अंधकार पूर्णरूप से दिशाओं तथा आकाश में फैल गया है मानों काजल पोत दिया गया हो। ॥ १०१० ॥

—ब्रह्माण्ड रूपी गृह में बड़े सुन्दर ढंग से बड़े-बड़े मोतियों से युक्त चंदोवा सजाया गया हो, इस विधि से नीले आकाश में नक्षत्र-समूह शोभायमान है। लोगों के आनन्द में वृद्धि करते हुए उडुराज (नक्षत्रपति) (चन्द्र) उदित हो रहा है।" ऐसा कहने पर, उन बातों की स्तुति कर, सभी (मुनियों) ने प्रसन्न होकर तब उस मुनीन्द्र से कहा—'हे अनघ ! विचार कर देखने पर तुम्हारा वंश निर्मल है। तुम्हारे वंश वाले अचूक (अतुलनीय) महिमा वाले हैं। परिशीलन करने पर (वे) ब्रह्म समान हैं। तुम्हारा ब्रह्मवर्चस् (ब्रह्मतेज) स्तुत्य है। उस कौशिकी ने भी, इस जगत् में तुम्हारे वंश को सप्रयत्न उज्ज्वल कर दिया है।' ऐसा कहते हुए उन मुनीश्वरों ने विश्वामित्र की विनुति (स्तुति) की। तब भूविभु

ननुचु विश्वामित्रु नम्मुनीश्वरुलु । विनुतिंचि; रंत भूविभुलु, संयमुलु
ना रात्रि निद्रिंप ना प्रभातमुन । ना ऋषिपुंगवु ला गाधिसुतुडु
'जननाथ ! निद्रलु सालिपु'डनिन । विनि तेरि पूर्वाह्णविधुला-
चरिंचि १०२०

कौशिकु जूचि 'यगाधमै चूड । नी शोणनदरत्नमित यौप्पगुनें ?
याकीर्णमीनंबु नतिरमणीय । सैकतंबुनु सुप्रसन्नतोयंबु
बरिचित हंसादि पक्षिसंघंबु । दरुणानिलोच्चलत्तरळतरंग
मैयुन्न दीयेरु ; ननघात्मक ! मन । मेयेड दाटुद ? मेत्तेरं ?' गनिन
'दरचुगा मुनुलेल्ल दाटेडु मार्ग । मेरिगिपोद' मटंचु नेडदव्वुबोव
गलहंस सारस कारंडवादि । जलपक्षिरवमुलु सरिदम्मु बिलुचु
विधमुन जेलगंग वीनुलिंपार । नधिपुडालिंचि,मध्याह्न कालमुन
सिद्ध मुनींद्र संसेव्यतीरमुनु । शुद्ध पुण्योदक सुप्रवाहमुनु
गलिगि नदीतिलकंबै धरित्रि । बोलुपारु जाह्नवि बोडगांचि,म्रोक्कि
'गाधेय ! चूड नगाधमै तोचु । नाधुनीरत्नंबु नट दाटिपोव १०३०

उस रात को सो गए । राम-लक्ष्मण और मुनिजन प्रभात समय (हो जाने पर) उन ऋषिपुंगवों (और) उस गाधिसुत के 'जननाथ, (अब) निद्रा छोड़ो' कहने पर, (उन बातों को) सुन, स्वस्थ हो (जागकर) प्रातःकाल की क्रियाओं का आचरण कर, ॥ १०२० ॥

—(राम-लक्ष्मण) कौशिक को देखकर बोले—'अगाध दीखने वाली यह श्रेष्ठ शोण नदी कितनी सुन्दर लग रही है ! मीनों (मछलियों) से आकीर्ण (पूर्ण), अतिरमणीय सैकत (स्थल), सुप्रसन्न (निर्मल या मधुर) तोय (जल), परिचित हंस आदि पक्षिसंघ (समूह), तरुण अनिल से उछलने वाली तरल तरंगों से युक्त है यह नदी । हे अनाघत्मक! हम कहाँ (पर इस नदी को) पार करें ? (और) किस विधि से ?' ऐसा कहने पर, (विश्वामित्र) ने कहा कि प्रायः मुनिलोग जिस स्थान से (इस नदी को) पार करते हैं, उसे जानकर, (वहीं से) पार करेंगे । वे बहुत दूर तक (नदी के किनारे-किनारे) गए । (वहाँ) कलहंस, सारस, कारंडव आदि जलपक्षियों के (कल-रव) ऐसे कर्णमधुर सुनाई पड़ रहे थे, मानों वे उनका स्वागत कर रहे हों । अधिप (राजा) ने उन्हें सुनकर, मध्याह्न के समय, सिद्ध-मुनीन्द्रों द्वारा संसेवित तीर-स्थली पर, शुद्ध, पुण्य-उदक सुप्रवाह से युक्त हो, धरित्री पर नदीतिलक स्वरूपा विराजमान जाह्नवी (गंगा) को देखकर, (उसे) प्रणाम कर, कहा—'हे गाधेय ! देखने में अगाध लगने वाली इस श्रेष्ठ नदी को पार कर जाने का मार्ग

देरुविंक नेय्यदि ? तेलुपवे' यनिन । 'नरनाथ ! यी शोणनदमुत्तरिंचि
मोगि मूडु योजनम्मुलु दाटिपोव । नगु नम्महानदि ; यंदाक मनकु
दोयफलादुलु द्रोव बे' क्कनुचु । ना येरु दाटि वारटु पोवुचोट
जेलगु सारसगणसेव्यमै पुण्य । सलिलमै युत्फुल्ल जलजमै विमल
फेनमै नित्यगंभीरमै चारु । मीनमै यतिपुण्य मिळितमै यौप्पु
गंगातटंबुन घनलताकुंज । संगतंबगु समस्थलमुन विडिसि
मनुजेंद्रतनयुलु माध्याह्निकंबु । लौनरिंचि मुदमंदि युचित भोज्यमुल
नोजमै मुनिगोष्ठि नौप्पुचुन्नंत, । राजन्यतिलक मा रामचंद्रुंडु
राजहंसोद्धूत राजीवरेणु । राजीविराजितरंगत्तरंग
गंग नालोकिंचि, कौशिकु जूचि । 'गंग यी वसुध के क्रममुन वच्चे ?
१०४०
ने तेरंगुन बोये निट नाकमुनकु? । बाताळमुनकु नेब्भंगि दा नरिगे?
नेचि पारवार मेगति जौच्च ? । ने चंदमुन बुट्टे निम्महातटिनि ?
चेप्पवे' यनवुडु श्रीरामु जूचि । यप्पुण्यधनुडु विश्वामित्रुडनियेः

कहाँ है ? बताइए ।' (ऐसा) कहने पर (विश्वामित्र ने कहा)—'हे नरनाथ ! इस शोण नदी को पार कर, ॥ १०३० ॥

—सप्रयत्न तीन योजन जाने पर, वह महानदी (गंगा) मिलेगी (वहाँ तक पहुँचेंगे) । तब तक हमारे लिए मार्ग में जल और फल बहुत मिलेंगे ।' ऐसा कहकर वे शोण नदी को पार कर जाने लगे । सारस-गण (समूह) से सेवित, पुण्यसलिल, उत्फुल्ल (विकसित) जलज, विमल फेन से संयुक्त, नित्यगम्भीर, सुन्दर मीनों से युक्त, अतिपुण्यमयी हो विराजमान गंगा के तट पर, घन-लता-कुंज-संगत (युक्त) एक सम (तल) स्थल पर (वे) ठहर गए । (वहाँ) राजकुमारों ने मध्याह्न समय के (उचित) कार्यों से निवृत्त हो, प्रसन्न-मन से उचित आहार ग्रहण किया (और) मुनियों की गोष्ठि (संगति) में विराजमान हुए । राजन्यतिलक (राजाओं में श्रेष्ठ) उन रामचन्द्र ने राजहंसों से उड़ाए गए (हिलाए गए) राजीव-रज के समूह (आधिक्य) से विराजित सुन्दर तरंगों वाली गंगा को देखा । (वे) कौशिक को देखकर बोले—'गंगा इस वसुधा पर किस क्रम (विधान) से आई ? ॥ १०४० ॥

—यहाँ से किस विधि से नाकलोक (स्वर्ग) को गई ? पाताल को किस तरह वह गई ? अतिशयता से उसने पारावार (समुद्र) में कैसे प्रवेश किया ? यह महातटिनी (नदी) किस तरह से पैदा हुई ? कह दो न ।' ऐसा

'गमनीयकांतुलु गल रूपवतुलु । हिमवंतुनकु गूतुलिरुवुरु गलरु;
अमरुलंदरुगूडि यागंबु कोरकु । हिमवंतु वेडि या यिरुवुरिलोन
गुरुपुण्ययगु पेद्दकूतुरु गंग ।नरुदार गोनिपोयि रमरलोकमुन;
कटमीद बार्वतियनु पिन्नकूतु । बटुतपोनिष्ठिकु बरितृप्तुडगुचु
फाललोचनुनकु बत्निगा निच्चे । ना लोललोचन ना नगाधिपुडु ।
सुरुचिरगति गंग सुरलोकमुनकु । नरिगि ता सुरनदि यनुपेर बरगे'
ननि चेप्पि मुनिनाथुडवनीशु जूचि । 'विनुमु वृत्तांतंबु वेन्डियु नोकटि
१०५०

कुमारस्वामि जन्म वृत्तांतमु

पार्वति वरियिंचि परमानुरक्ति । सार्वकालंबुनु जंद्रशेखरुडु
नतिलोक गति लोलुडै दिव्य वर्ष । शतमु दा रतिकेळि सलुपुचुन्नेडनु
गमलासनुंडादिगा सर्वसुरलु । दमलोन नेन्तयु दारु सिंतिंचि
'वेलय नी यिरुवुर विषमतेजंबु ।दलप नेव्वरिकैन धरियिंप वशमे ?

पूछने पर श्रीराम को देखकर, वे पुण्यधनी विश्वामित्र बोले—'हिमवान् के कमनीय कान्ति से युक्त, रूपवती दो पुत्रियाँ हैं। सभी अमरों ने मिलकर, याग (यज्ञ) के लिए, हिमवान् से प्रार्थना की (और) उन दोनों में से गुरु (महान्) पुण्य वाली बड़ी पुत्री गंगा को, प्रेम से (ठाठ-बाट से) अमर-लोक ले गए। उसके बाद पार्वती नामक छोटी पुत्री की पटु-तपोनिष्ठा से परितृप्त होकर, उस नगाधिप (पर्वतराज) ने उस लोल-लोचनों वाली को, फाल-लोचन (शिवजी) को पत्नी के रूप में दिया। सुरुचिरगति से गंगा सुरलोक में जाकर, सुरनदी के नाम से विख्यात हुई।' ऐसा कहकर मुनिनाथ अवनीश (राजा) को देखकर बोले—'सुनो, एक और वृत्तान्त है। ।। १०५० ।।

कुमारस्वामी का जन्म-वृत्तान्त

—'पार्वती का वरण कर, परम अनुरक्ति से चन्द्रशेखर (शिवजी) अतिलोकगति में लीन हो एक सौ दिव्य वर्षों तक सदा रतिक्रीड़ा करते रहे। तब कमलासन (ब्रह्मा) आदि सभी सुर (देवता) अपने-आप में अधिक सोच-विचार करने लगे कि 'इन दोनों के विषम तेज को धारण करना किसी के वश की बात नहीं है।' ऐसा कहते हुए (सोचते हुए) सभी उन महादेव के पास आए, विनीत हो सद्भक्ति से प्रणाम किया

यनुचु नंदरु नम्महादेवु कडकु ।जनुदॆन्चि विनतुलै सद्भक्ति म्रोक्कि
देवदेव ! महेश ! देव! सर्वेश ! । देवनिस्तारक ! देव ! नी महिम
सर्व गीर्वाणुलु सन्नतिंचॆदरु; । सर्वज्ञ ! माकु ब्रसन्नुंडवगुम ;
येपारु नी तेज मॆव्वरु दाल्प । नोपुदु ? रटुगान युडुगु मीविधमु;
करुण दपोवृत्ति गैकॊनि मीरु । सरि ब्रह्मचर्यंबु जरियिंप वलयु;
ननवुडु 'नौगाक' यनुचु ना सुरल । गनुगॊनि मुदमुतो गौरीशुडनियॆ;
१०६०
'जलियिंचिनदि निजस्थानंबु वलन; । नॆलकॊनि मीलोन निर्जरुलार !
यॆव्वरु दाल्चॆदरीतेज' मनिन । 'निव्वसुंधर दाल्चु निंपार' ननिरि
हरुडु ना सुरलतो 'नौगाक' यनुचु। धरणिपै गाविंचॆ दद्विमोक्षणमु ।
दिविजुलय्यॆड नग्निदेवु नीक्षिंचि । 'पवनुनितोगूडि पावक ! नीवु
इलमीद बडियुन्न इम्महातेज । मॆलमि ब्राशिपुमि यिंपार' ननिन
स्ववशंबु गानट्टि शर्वुतेजंबु । पवनपावकुलुनु भरियिंपलेक
यंगजहरु वीर्यमप्पुडु वेग । गंग लोगॊननिच्चॆ गरमर्थितोड़;

(और) कहा—'हे देवदेव! हे महेश! हे देव! सर्वेश! देवनिस्तारक! देव! तुम्हारी महिमा की सभी गीर्वाण (देवता) सन्नुति (संस्तुति) करते हैं। हे सर्वज्ञ! हमपर प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारे अतिशय तेज को कौन धारण कर सकेंगे? (कोई धारण) नहीं कर सकता अतः यह क्रम (रतिक्रीड़ा) छोड़ दो। (हम पर) करुणा (भाव) से तपोवृत्ति ग्रहण कर, (तुम) दोनों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।' ऐसा कहने पर, 'ऐसा ही हो' (तथास्तु) कहकर उन देवताओं को देख, प्रसन्न हो गौरीश बोले, ॥ १०६० ॥

—'अपने स्थान से (वीर्य) विचलित हो चुका है। तुम में से हे निर्जरो! इस तेज को कौन स्थिरता से धारण कर सकेंगे?' (ऐसा) कहने पर (उन्होंने) कहा—'यह वसुन्धरा शोभायुक्त होकर धारण करेगी।' हर (शिव) ने 'ऐसा ही हो' कहते हुए तत्क्षण (उस वीर्य का) विमोक्षण (विमोचन) धरती पर कर दिया। दिविजों ने उस समय अग्निदेव को देखकर कहा—'पवन से मिलकर हे पावक! तुम धरती पर पड़े हुए इस महातेज को हर्ष के साथ पान करो।' (ऐसा) कहने पर, अपने वश में न आने वाले शर्व (शिव) के तेज को, पवन और पावक वहन न कर सके। (अतः) अंगजहर (शिव) के वीर्य को तब गंगा ने बड़ी इच्छा से (उस वीर्य को) अपने में आने दिया। तब उस स्त्री (गंगा) ने स्थिरता से, प्रेम के द्विगुणित होने पर उसे धारण किया।

भोगनि भुलाए, छड्डिया जीअ जहान जा ।
भवनि पँहिजो पाणहीं, फाही गलि पाए ।
कालु न ड्डिसनि सिर ते, वरी वाझाए ।
विया सभि विञाए, हीरो जन्मु हथनिमों ॥ २५० ॥

विषय-भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अतः वे स्वयं ही गले में फाँसी डालकर भटक रहे हैं। वे उलट कर (विरक्त होकर) सिर पर खड़ी मृत्यु को अपनी ओर ताकते हुए नहीं देखते हैं। वे सब अपने हाथों से हीरे के समान (मानव) जीवन को गँवा रहे हैं ॥ २५० ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
धिका खाइनि धर्म जा, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, मिल्यो शुधि स्वरूप साँ ॥ २५१ ॥

विषय-भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है, अतः वे कोटि-कोटि जन्म पाकर व्यर्थ के धक्के खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओं के सहारे, ममत्व मिटाकर, भोगों से बचकर, शुद्ध स्वरूप से जा मिला है ॥ २५१ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
पाणु पँहिजो पाण में, वेठा विञाए ।
सामी समुझनि कीन की, कोट जन्म पाए ।
छुटो छुटाए, त अचनि अन्भय पद में ॥ २५२ ॥

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने संसार के जीवों को भुला दिया है, अतः वे अपने अहं में अपने (परमात्मा अथवा स्वरूप) को खो बैठे हैं। करोड़ों जन्म पाकर भी वे यह नहीं समझते हैं पर जब कोई मुक्त (माया से मुक्त व्यक्ति अथवा सद्गुरु) उन्हें (माया तथा विषय भोगों से) छुड़ाता है तभी वे आत्म-पद को प्राप्त होते हैं ॥ २५२ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
सामी सुम्हिया सुखि थी, पेट ग्रिचीअ पाए ।
कालु न ड्डिसनि कन्ध ते, खर्ची थो खाए ।
लेखो चुकाए, अची घुटीन्दुइ ओचितो ॥ २५३ ॥

भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अतः वे निश्चिन्त होकर सुख की नींद सो रहे हैं (अज्ञान में ही मस्त रहते हैं)। वे कन्धे पर सवार (आयु अथवा जीवन को) खरचने-खाने वाली मृत्यु को नहीं देखते हैं। सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि यह (काल) तेरा हिसाब किताब तुझे पकड़कर, अचानक ही चुका देगा ॥ २५३ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ वहण में।
गोता खाइनि ग़ैब जा, कोट जन्म पाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
ममत्व मिटाए, पूरणु द्रिठो जँहिं पीअ खे ॥ २५४ ॥

भोगों ने संसार के जीवों को (प्रपंच के) प्रवाह में डाल दिया है। वे कोटि जन्म पाकर ग़ैब के ग़ोते खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही, साधुओं के सहारे ममता मिटाकर, भोगों से बचकर, पूर्ण प्रियतम को देखा है ॥ २५४ ॥

भोगनि भुलाए, विधो जीउ वहण में।
पुठी द्रेई पाणखे, गोता नितु खाए।
उल्टी द्रिसे कीनकी, मूँहुं मढ़ीअ पाए।
जागयो जागाए, त सुखी थिए, सामी चए ॥ २५५ ॥

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने जीव को (प्रपंच के) प्रवाह में डाल दिया है, अतः वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर सदैव (प्रपंच रूपी समुद्र में) ग़ोते खा रहा है, वह पलट कर (संसार से विरक्त होकर) हृदय में नहीं देखता है। पर जब उसे जागृत (सद्गुरु) जगाता है (ज्ञान देता है) तभी वह सुखी होता है ॥ २५५ ॥

भोगनि भुलायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, भर्मे भुलायो।
सामी सङ्गि साधूअ जे, उल्टी घरि आयो।
नकी विञायो, नकी पातो पाण रे ॥ २५६ ॥

भोगों ने प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को (अपने स्वरूप से) भुला रखा है अतः वह भ्रम में भूलकर संसार को सत्य मान बैठा है। सामीजी कहते हैं कि जो (व्यक्ति) साधुओं के संग से (संसार से) विरक्त होकर (हृदय रूपी) घर में वापस लौट आया है, उसने न तो कुछ खोया है और न कुछ पाया है ॥ २५६ ॥

भोगनि भुलायो, सभ कँहिंखों सुप्रीं ।
सतिगुर पँहिंजे सघ साँ, जँहिंखे जाग्रायो ।
सुख दुःख जे सागर में, विझी वहायो ।
उल्टी घरि आयो, सामी चए को सूर्मो ॥ २५७ ॥

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने सब जीवों को प्रियतम से वचित कर दिया है (भोगों में पड़ कर सब प्रियतम को भूल गये हैं) तथा उन्हें सुख-दुःख के सागर में डालकर बहा दिया है (नष्ट कर दिया है) । पर जिसे सद्गुरु ने अपनी शक्ति से जागृत किया है वही शूरवीर (ज्ञानी) पलट कर (संसार से विरक्त होकर) अपने घर में आया है (आत्मा को पा लिया है) ॥ २५७ ॥

भोगनि मंझि भुली, पिया जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, रात्याँ ड्रींह रुली ।
सामी लधो कँहिं सूर्मे, अन्भय घरु असुली ।
मेटे कल्प कुली, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ २५८ ॥

संसार के सब जीव भोगों में पड़कर (अपने आप को) भूल गये हैं । वे निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन, दिन रात भटक-भटक कर मर रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही समस्त प्रपंच को मिटाकर, आत्म-ज्ञान के आदि घर को ढूँढ कर, आकाश की भाँति स्थिर हो सका है ॥ २५८ ॥

भोग भोगे भारी, कूड़ा रज़नि कीन की ।
खयों वतनि सिर ते, तमा तगारी ।
सुखी रहे सामी चए, को व्रिलो वीचारी ।
बेहद जी बारी, पटे ड्रिठो जँहिं पाण खे ॥ २५९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी जीव) अनेक भोग भोग-कर भी सन्तुष्ट (तृप्त) नहीं होते हैं । वे सिर पर कामना रूपी तगारी (बोझ) लेकर फिरते रहते हैं । कोई विरला विचारवान् ही अनंत की खिड़की खोलकर, अपने स्वरूप को देखकर, सुखी हुआ है ॥ २५९ ॥

भोग भोगे भोगी, रज़नि न रतीअ जेत्रो ।
जिनिजी माया मोह साँ, मति कई मोगी ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को जाग्रायो जोगी ।
सदा निरोगी सामी रहे स्वभाव में ॥ २६० ॥

सामीजी कहते हैं कि वह भोगी जिसकी माया ने मोह से बुद्धि मन्द कर दी है, अनेक भोग भोगकर भी रत्ती मात्र भी तृप्त नहीं होता। पर जागृत योगी सदैव ही निरोगी (भोग रूपी रोग से मुक्त) होकर, स्वरूप के सुख का उपभोग करता है एवं अपने ही भावों में मस्त रहता है ॥ २६० ॥

भोले भुलाए, सभखे माया मोहिणी।
मति खसे मोगो करे, वह में वहाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
वेठो वज़ाए, नंगारो निरब्राण जो ॥ २६१ ॥

मोहिनी माया सब को भ्रम में भुला देती है, वह (माया) सब की बुद्धि छीन कर, मन्द बनाकर (प्रपंच के) प्रवाह में बहा देती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओं के सहारे से (माया से) बच सका है एवं बैठकर निर्वाण रूपी नगाड़ा बजा रहा है (माया से मुक्त हो आत्मानंद प्राप्त कर रहा है) ॥ २६१ ॥

भोले भुलायो, अणहून्दे अज्ञान जे।
पुठी द्रेई पाणखे, दह दिसां धायो।
स्वप्न में सामी चाए, सभु रंगु रचायो।
अखि खुल्ये आयो, ऐनु अभेद आकास में ॥ २६२ ॥

सामीजी कहते हैं (मनुष्य को) अस्तित्व-हीन (झूठे) अज्ञान के भ्रम ने भुला दिया है, अतः वह अपने से मुख मोड़कर (अपने स्वरूप को न पहचानकर) दसों दिशाओं में भटक रहा है। स्वप्नवत् (संसार में) उसने अनेक (प्रपंच के) रंग रच दिये हैं, पर आँख खुलने पर ही (ज्ञान प्राप्त होते ही) उसे अनंत में अभेद, चेतन आत्मा दिखाई देती है ॥ २६२ ॥

भोलो पियो भारी, जुदाईअ जो जग में।
तपी तँहिंजे ताव साँ, नचनि नर नारी।
सामी वेठो सम थी, को व्रिलो वीचारी।
बेहद जी ब्रारी, पटे द्रिठो जँहिं पाणखे ॥ २६३ ॥

सामीजी कहते हैं कि संसार में द्वैत का ऐसा भारी भ्रम फैल गया है, जिसके ताप से तपकर (प्रभावित होकर) समस्त नर-नारी नाच रहे हैं। वही विरला विचारवान् सम होकर (दुख-सुख में समभाव

होकर) बैठा है, जिसने अनंत की खिड़की खोलकर अपने स्वरूप को देख लिया है ॥ २६३ ॥

मनन जी माखी, चटे जीअ चर्या थिया ।
काया माया कुल में, कल्पत नितु कांखी ।
कँहिं सुजागे सही कई, सामी थी साक्षी ।
छद्रे हलाखी, जुर्यो रहे जगदीस साँ ॥ २६४ ॥

सामीजी कहते हैं कि मन का शहद चाट कर जीव पागल से हो गये हैं (मन के संकल्प-विकल्प में जीव अपने आप को खो बैठे हैं) । वे सदैव काया, माया तथा कुल के प्रपंच के ही इच्छुक रहते हैं । कोई (ज्ञानी) ही दुखदायी (माया) के सही रूप को जानकर, साक्षात् जगदीश्वर से जा जुड़ा (मिला) है ॥ २६४ ॥

मनन मंझि मुठा, ज्ञानी ध्यानी ग़ृहस्ती ।
सूधी राह छद्रे करे, पाइनि पेर पुठा ।
वारौ वार समुझ रे, कल्पत काल कुठा ।
मूर्ख रहनि रूठा, सामी शुधि स्वरूप खों ॥ २६५ ॥

सामीजी कहते हैं कि ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थी मन के संकल्प-विकल्प में नष्ट हो गये हैं; वे सीधी राह छोड़कर, उल्टी राह पर पैर रख रहे हैं (उल्टी राह अपना रहे हैं) । वे बुद्धिहीन होकर बारबार जन्म-मृत्यु के चक्कर में भटक रहे हैं । ये मूर्ख शुद्ध स्वरूप (परमात्मा) से सदैव रूठे रहते हैं (दूर रहते हैं) ॥ २६५ ॥

रङ्ग अपारु रचियो, माया मोह ममत्व जो ।
तँहिमें जगु तद्रूपु थी, नाना भाइं नचियो ।
को साधू जन सूर्मो, बला खों बचियो ।
आत्म शुधि सचो, सामी माणे सर्वगति ॥ २६६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह तथा ममता का असीम प्रपंच रचा है, जिसमें संसार तद्रूप होकर, नाना भाँति से नाच रहा है । कोई शूरवीर (ज्ञानी) साधु ही (माया रूपी) नागिन से बच पाया है एवं शुद्ध तथा शाश्वत आत्म-सुख का उपभोग कर रहा है ॥ २६६ ॥

लाहे जँहिं धरी, ममत्व पिण्डु मथेतों ।
सामी तँहिं सापुरुष जी, लूअँ लूअँ सभुठरी ।
मँझों तारि तरी, पहुतो पारि प्रियनि साँ ॥ २६७ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस महान् पुरुष ने सिर से ममता का पिण्ड उतार कर रख दिया है, उसका रोम-रोम शीतल हो गया है। वह (संसार रूपी) समुद्र को तैर कर, उस पार प्रियतम से जा मिला है ॥ २६७ ॥

लाहे जँहिं भरी, बिधी माया ममत्व जी।
सामी तँहिं सापुरुष जी, लूअँ लूअँ पई ठरी।
मोटी द्रिसे कीन की, माया मंझि अरी।
वञे पाण मरी, जीअन्दे हिन जहान मों ॥ २६८ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस श्रेष्ठ पुरुष ने माया-ममता की गठरी उतार कर रख दी है, उसका रोम-रोम शीतल हो गया है। वह माया में दुबारा नहीं फँसता (एक बार माया से मुक्त होने पर, वह दुबारा उसमें नहीं फँसता है)। वह इस संसार से जीवनमुक्त हो जाता है ॥ २६८ ॥

सन्से जगु सारो, मुंझाए मोगो कयो।
कँहिंजी हले कीनकी, चतुराई चारो।
त्रिलो को गुर्मुखु रहे, निर्पक्षु न्यारो।
अन्भय उज्यारो, सामी द्रठो जँहिं सम थी ॥ २६९ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम ने सारे संसार को उलझन में डाल कर मन्द बना दिया है। इस (भ्रम) के आगे किसी की कोई युक्ति तथा चतुराई नहीं चलती है। वही विरला-गुरुमुख निष्पक्ष तथा न्यारा रहता है जिसने सम होकर आत्मज्ञान का प्रकाश देखा है ॥ २६९ ॥

सन्से सभु सन्सार, लोड़े लावारो कयो।
लही सघे न लख्य रे, पच्छिन्नता जो पारु।
साख द्रिए सामी चए, साधूजनु सच्यारु।
करे जँहिं करारु, पूरणु द्रिठो पीअ खे ॥ २७० ॥

भ्रम ने सारे संसार को (अपने प्रवाह में) बहाकर नष्ट कर दिया है। आत्मज्ञान के सिवा वह परिच्छिन्नता (आत्मा-परमात्मा के अलग भाव का रहस्य) का अन्त भी नहीं पा सकता है। सामीजी कहते हैं कि सत्यव्रती साधु पुरुषों ने यही साक्षी दी है कि वही (मनुष्य) चैन से रहता है, जिसने पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को देख लिया है ॥ २७० ॥

सन्से सभेई, द्रङ्गे जीअ दुःखी कया।
अणहून्दी अविद्या जी, ज़हरु चढ़ी वेई।
सामी सुधि पेई, ईहा जाग्रये जन खे ॥ २७१ ॥

भ्रम ने सब जीवों को अपने डंक से दुखी कर दिया है; अस्तित्वहीन अविद्या का ज़हर उन (जीवों) में व्याप (फैल) गया है। (जिस प्रकार सर्प के डंक से सारे शरीर में उसका ज़हर फैल जाता है उसी प्रकार भ्रम रूपी सर्प के डंक से अज्ञान रूपी ज़हर सारे शरीर में व्याप्त हो गया है।) सामीजी कहते हैं कि जागृत (ज्ञानी) को ही इस बात का ज्ञान होता है ॥ २७१ ॥

सन्से सर्प द्रङ्गे, मोगो कयो माणुहुनि खे।
अठई पहर अन्दर में, सभिको पियो सङ्गे।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, लोकाँ लोक लंघे।
जँहिंखे रङ्गि रङ्गे, सामी छद्रियो सतिगुरूअ ॥ २७२ ॥

भ्रम रूपी सर्प ने मनुष्यों को डंक मार कर, उन्हें बुद्धिहीन बना दिया है, अतः आठों पहर सब उस भ्रम में ही भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही प्रेमी संसार को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने (आत्म) रंग से रंग दिया है ॥ २७२ ॥

सन्से सर्प द्रङ्गे, सामी विधा जीअ सभि।
चिन्ता चाह रसीअ साँ, वेठा पाणु वङ्गे।
सघे कोन लंघे, मृघतृष्णा जे जल खों ॥ २७३ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम रूपी सर्प ने सब जीवों को डस लिया है। वे चिन्ता तथा चाह रूपी रस्सी से अपने आप को बाँध बैठे हैं, अतः वे मृगतृष्णा के जल (माया) से पार नहीं हो सकते हैं ॥ २७३ ॥

सन्से सर्प द्रङ्गे, सारो द्रेहु दुखी कयो।
सामी वियो को सूर्मो, परिपकु पारि लंघे।
जँहिंखे छद्रियो सतिगुरूअ, आत्म रङ्गि रङ्गे।
कँहिंखों कोन मङ्गे, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २७४ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम रूपी सर्प ने सारे विश्व को डस कर दुखी बना दिया है। कोई परिपक्व (अनुभवी) शूरवीर ही इस

(भ्रम) से पार हो सका है। जिसे सद्गुरु ने आत्म-रंग में रंग दिया है वह किसी से कुछ न माँगकर मुक्तावस्था का ही आनंद लूटता है ॥ २७४ ॥

सभखे फर्कु फिकिलि, माया लाथो मोह साँ।
सति ज़ाणी सन्सार खे, सामी हणनि सिरु।
कँहिं सुजाग़े सुर्मे, साधूअ कयो सबुरु।
जाग़ी जँहिं ज़ाहिरू, ज्योति द्रिठी ज़िन्दपीर जी ॥ २७५ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह से सब को भेद तथा भ्रम में डाल दिया है, अतः वे संसार को सत्य मानकर अपना सिर खपा रहे हैं (कष्ट उठा रहे हैं)। पर जागृत शूरवीर साधु ने धैर्य से काम लिया क्योंकि उसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) ज़िन्दपीर (परमात्मा) की ज्योति को प्रत्यक्ष देखा ॥ २७५ ॥

सभखे भउ भारो, लायो भूत भर्म जो।
कँहिंजी चले कीनकी, चतुराई चारो।
सामी रहे को सूर्मो, नभ जाँ न्यारो।
जाग़ी जग़ु सारो, लै द्रिठो जँहिं लख़्य में ॥ २७६ ॥

भ्रम रूपी भूत का भारी भय सब (जीवों) को लगा हुआ है। उसके (भ्रम के) आगे किसी की चतुराई एवं विद्वत्ता नहीं चलती है। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने जागृत होकर, सारे विश्व को परमात्मा में लय होते देखा है, वही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ॥ २७६ ॥

सभखे मन करे, छद्रियो ग़र्टु ग़िचीअ में।
भवनि नितु भुलनि जाँ, ज़ाणी पीअ परे।
कँहिं आशिक हंयुसि अन्भई, बेहद ब़ाणु भरे।
सामी द्रिसी ठरे, पँहिंजे अख़्यें पाण खे ॥ २७७ ॥

सामीजी कहते हैं कि मन ने सब के गले में (माया की) फाँसी डाल दी है, अतः वे प्रियतम को (अपने से) दूर जान कर भूले हुए लोगों की तरह सदैव भटक रहे हैं। पर कोई अन्तर्मुख प्रेमी जिसने (मन को) अनंत (ज्ञान का) तीर भर कर मारा है, वह अपने ही नेत्रों से अपने स्वरूप को देखकर शीतल हो गया है ॥ २७७ ॥

अंतु परविद्धमं प्रत्यक्षमं माडिद चित्रकन परिणतियं मनदेकोंडु लेप्पदरसनं करुमाडदेरडनेय नेलेयोळिरिसि परिजनमुं तानुमोलगिसुत्तिरे—

जनकन मंत्रियुमी क्रम * दिननुष्टिसि कळिपे जनकनुं दशरथनुं
दिनकरनुं हिमकरनुं * घनाघनांतरितरादरेने तलेगरेदर् ॥२७॥

अन्नेगमित्त विभीषणादेशदिं बंद तीक्ष्ण पुरुषर् पुरमंपोक्कु करुमाडमं पुगल्पडेयदे तडेदिर्पुदुं—

अट्टिद जट्टिगर्तडेदुदर्के कनल्दु विभीषणं मुगि-
ल्वट्टेयिनट्टि तिंब जवनंतिरयोध्येगे बंदु पोक्कु पो
बेट्टमेनिप्प पोन्नकरुमाडमनंदिरुळल्लि कंडु क-
ण्मुट्टिनोळिर्द लेप्पदरसं कोलवेळ्दनसार चेतनं ॥ २८ ॥

अंतु पेळ्वुदुं—

बेसनं विद्युद्विळसित * वेसर वियच्चर भटोत्तमं पडेदु जवं
मसगिदनेने कापिनव-* देसेगिडे पोक्किरिदु कोंदु तलेयं तंदं ॥२९॥

आ समयदोळ्—

परिजनद भूपनंतः
पुरदबळाजनद नेगेद हाहारवमे-

—इस तरह के असाध्यकार्य को भी संभव कर दिखानेवाले शिल्पी की कुशलता की मंत्री ने तारीफ की और राजा की प्रतिमा को राजमहल की द्वितीय मंजिल पर रखवाकर परिजनों के साथ स्वयं दरबार में विराजमान हुआ। उधर जनक के मंत्री ने भी राजा की प्रतिमा बनवाकर राजा को विदेश भेज दिया। इस तरह जनक और दशरथ बादल में छिपे सूर्य-चन्द्र की तरह सिर छिपाकर गुप्त जीवन बिताने लगे। २७ —तब विभीषण की आज्ञा पाकर आए हुए हत्यारे नगर में प्रविष्ट हुए, लेकिन राजमहल में घुसने में असमर्थ हुए। इसे जानकर—विभीषण कुपित हो यम (काल) की तरह अयोध्या में आकर रात के समय सुवर्ण-पर्वत के समान दिखाई देनेवाले राजमहल में घुसकर राजा की प्रतिमा को देखकर, परिचारकों को उसे मार डालने की आज्ञा दी। २८ —ऐसा कहने पर—आज्ञा पाया हुआ गन्धर्व क्रुद्ध होकर काल की तरह शत्रुओं पर टूट पड़ा। रक्षक भयभीत हो भाग गये तो वह गन्धर्व (दशरथ की) प्रतिमा का सिर काट लाया। २९ —उस समय, परिजनों एवं अन्तःपुर की स्त्रियों का हाहाकार सुनकर वह

य्तरे किविगे केळ्दु नलिदं
करुणारस रहितनावनाखचरनवोल् ॥ ३० ॥

कॊललेदुं बंदु लेप्पद
तलेयं कॊंडुय्दना विभीषणनारुं
कॊललार्परे सायदरं
ललाटदॊळ् विधिय बरेद लिपि जल लिपिये ॥ ३१ ॥

अंतवन तंद तलेयं कडलॊळीडाडि जनकनुमनंतेमाडि मगुळे लंकेगे पोगि—

मनदॊळ्तन्न नेगळ्तेयं नेनेदु कष्टंगैदेनानी दशा-
ननं कॊल्ववनावनी कडलनावं दाटुवं लंकेगा-
वनॊ बर्पंगड भूमि गोचरनिदं नैमित्तिकं पेळ्दॊडा-
तन मातिंगविचारितं नेगळ्देनेंदुब्बेगमं ताळ्दिदं ॥ ३२ ॥

जिनगृहमं प्रायश्चि-*त्त निमित्तं निरतिशयमेनल्माडिसिदं
तनगे कषायोदयदिं *जनयिसे पॊल्लमेयनॊळ्ळदं सैरिपने ॥ ३३ ॥

अन्नेगमित्त दशरथन जनकन परिजनं लेप्पदरसनप्पुदनरिदु संतोषबट्टिर्पुदुं अत्त दशरथनुं जनकनुं रूप परावर्तनदिननेक देशंगळं नोडुवुदे तमगे बिनोदमागे तॊळलुत्तुं बंदु—

राक्षस निर्मोही-सा तृप्त हुआ। ३० दशरथ को मारने के लिए जो विभीषण आया था, वह दशरथ की प्रतिमा का सिर काटकर ले गया। न मरनेवालों को कौन मार सकता है? भाग्य की लिखावट पानी पर लिखे गये अक्षर थोड़े ही है? । ३१ दशरथ के लाये हुये सिर को समुद्र में फेंककर तथा जनक के सिर के साथ भी वैसा ही व्यवहार करके, विभीषण लंका लौटा। और उसने मनमें अपनी कीर्ति को स्मरण कर, समझा कि उसने पापकर्म किया है। अब रावण को मारनेवाला कौन है? समुद्र पार करके लंका में कौन आयेगा? ज्योतिषी की बातों पर विचार किए बिना मैंने अनर्थ किया। ३२ जैन मंदिर में प्रायश्चित करवाया। पापकर्म घट जाने के पश्चात् उससे आनेवाली अपकीर्ति को सज्जन सह सकता है? । ३३ —इधर दशरथ और जनक के परिजन यह जानकर संतुष्ट हुए कि प्रतिमाओं के सिर काटे गये हैं, असली राजाओं के नहीं। उधर दशरथ और जनक वेष बदलकर अनेक देशों में यह सोचकर भ्रमण कर रहे थे कि उन देशों का भ्रमण करना विनोद की बात

सकलर्तुक मनदिं दी * घिकेंयि पुष्करिणियिं सरोवरदिं कौ-
तुकमनवर्कडकौं- * तुक मंगलपुरमनुर्वरा नूपुरमं ।। ३४ ।।

मिसुगुव पोन्नकोंटे मुगिलं तुडुकुत्तिरे पेंपुवेत्तगळ्
बिसरुहमुळ्ळरल्दु सिरिकण्देरेदंतिरे सुत्तलुं बनं
कुसुमशरंगे पोच्चपोस जौवनदंतिरे राजधानि क-
ण्गसदळमोप्पि तोरिदुदु कौतुक मंगळमात्त मंगलं ।। ३५ ।।

आ पुरद पोरपोळलनेय्देवर्थागळ—
ललना रत्नदोळं जय * ललना रत्नदोळमप्प तोळ्वेरगन ना
कुलमरिपुदंते बलग * ण्बलगै केत्तिदुवु दशरथंगोमोदलोळ् ।। ३६ ।।

अंतेय्देवर्पुदुमापुरद बहिःपुरोद्यान प्रदेशदोळ कनक प्राकार कमनीयमुमंबर तळ चुंबि चंचद्धवजराजि विराजमानमुमनेक मणिभवन भासुरमुमेनिसि जनमनोहरं स्वयंवरभूमि नयनाभि-राममादुदल्लि—
पळुकिन चौरवंडंगळ * केळगण चेंबोन्न मत्तवारणदोळ क-
ण्गोळिसिदरनेक देशं- * गळ राजतनूजरोळियिंदिर्केलदोळ् ।। ३७ ।।

आगळल्लि—
नयनाकर्षणविद्यै गंडुवरिजं कैकोंडुदो गंडगा-
डियनीतंगे मनोजनोप्पिसिदनो पेळेंबिनं बण्णिसल्

है। एक ही समय (एक साथ) समस्त ऋतुओं की शोभा से युक्त वनों से, एवं कूप, तालाब एवं सरोवरों से सुशोभित कौतुक मंगलपुर को देखकर दशरथ और जनक दोनों अत्यन्त चकित हुए। ३४ सुवर्ण का चमकता किला बादलों से बात कर रहा था। उसके प्राकार (चहारदीवारियाँ) खिले कमल-से सुंदर थे। आस पास के वन कामदेव को प्राप्त नवयौवन के समान थे। ऐसे में कोतुकमंगलपुर की राजधानी मंगलमय प्रतीत हुई। ३५ —उस नगर की वाह्यसीमा के पास आते समय दशरथ को एकाएक ललनाओं और जयश्री के भुजालिंगन के अनुभव के लक्षण, दाहिनी-बाँह और दाहिनी आँख के स्फुरण से, पूर्व सूचना के रूप में प्रतीत हुए। ३६ —इस तरह आए तो नगर का उद्यान प्रदेश आकाश को चूमती हुई पताकाओं, स्वर्ण-प्राकारों एवं अनेक रत्नभवनों के आलोक से जगमगाता, आँखों को आनन्द देनेवाला, सुन्दर स्वयंवर मंडप दिखाई पड़ा। चंद्रकाँत शिला के दालान के नीचे के चबूतरे में दोनों ओर अनेक देशों के राजकुमार विराजमान थे। ३७ —तब, आँखों को अनायास आकर्षित

बयसल्तक्क बेंडंगु कण्गोळिसे तन्नं कंडणं कन्नया-
सेयना राजकुमारकर्तोरेविनं पोक्कं सभासद्ममं ॥ ३८ ॥
तोडवुगळेडुमादनितरिं तनगक्कुमे गाडि गाडि मे-
य्दोडवेने मासि रूपुगरेदिर्दोडमातन रूपिदोंदु क-
ण्दोडवेने बेरिदोंदु बगेगिक्किद टक्केने वश्यदोंदु त-
ण्जोडरेने नोळ्प नोटकर कण्गोळादुदु कण्णपापेवोल् ॥ ३९ ॥
अंतु दशरथं स्वयंवर सभासदनमं पोक्कु तानुं जनकनुमोंदु
कडेय पट्ट कांचनमंचोपांतदोळ् निदुं नोडुत्तुमिरे—
अेरि मणिवेसेद सिविगेय
नेरिसि कुडुविल्लनोडने बरे कंदर्प
नीरे मुगिल्वोरेयोळ् मे-
य्दोरुव शशिकळेय गाडियं गेलेवंदळ् ॥ ४० ॥
युवतीरत्नद केलदोळ् * धवळ विलोचन मरीचि तिंगळ बेळगं
कवर्दु कोळे कुंचदडपद-* डवकेय कन्नडिय केन्नेयर्कण्गेसेदर् ॥ ४१ ॥
अेळवेरे पोन्न पुत्तळिगे रत्नद दीविगे तन्न पुष्प को-
मळ तनु बेरे बीरे नयनोत्सवमं निजलोचनंगळु-

करनेवाली विद्या मानो पुरुषरूप धारणकर सम्मुख आ गई हो, जिसे कामदेव ने स्वयं पुरुष का मनोहर सौंदर्य प्रदान किया हो, इस प्रकार के वर्णनीय तथा रूपवान् दशरथ स्वयंवर-मंडप में ऐसे प्रविष्ट हुए कि उन्हें देखकर ही राजकुमारों का समूह कन्या की आशा छोड़ बैठा। ३८ आभरण सुन्दर होने से कहीं शरीर का सौंदर्य बढ़ता है ? सौंदर्य मानो शरीर का आभरण है, वेष बदला हुआ होने पर भी मानो वही एक मात्र सुन्दर है, एक जादू-सा, वशीकरण मंत्र के एक प्रकार सा और आँखों को ठंढक पहुँचानेवाले एक प्रकाश सा, दशरथ का रूप दर्शकों को दिखाई पड़ा। ३९ —इस तरह दशरथ और जनक स्वयंवर मंडप में प्रवेशकरके एक स्वर्ण-मंच के पक्ष में खड़े होकर देख रहे थे कि—रत्न-पालकी पर चढ़कर धनुष चढ़ाए हुए कामदेव की तरह, एक युवती आई। उसका सौंदर्य बादलों के बीच से छनछनकर आनेवाली चाँदनी से भी बढ़कर था। ४० उस युवती के बगल में चामर, तांबूल, पीकदानी लिए हुए परिचारिकाएँ थीं जिनकी आँखों की ज्योति शुभ्र ज्योत्स्ना के समान थी। ४१ बालचंद्र-सा, सुवर्ण-प्रतिमा-सा तथा रत्नदीपक-सा उसका कोमल शरीर दर्शकों के नेत्रों को उत्सव का आनंद प्रदान कर रहा था। उसकी आँखों में कमल-दल

त्पळ दळ दामम केदरे कण्गेसेदळ् नवरत्नमाळे कें-
दळदोळनंगपाशमेने कैके मनोजन बय्त बय्कैवोल् ॥ ४२ ॥

आ समयदोळखिळ राजकुलदुभय विशुद्धियमनन्वय प्रसिद्धियुमनरिपि—

कंचुकि परिविडियिं नृप
संचयमं तोरे निंदुदिल्लवळ तटि-
त्संचल नयनयुगं निज-
दिं चळवोंदेडेयोळेंतुमें निदंपुदे ॥ ४३ ॥

आ नेरेदिर्द राजसुतरं परिदेय्दि बळल्दु विश्रम
स्थानमना महीभुजन मेय्सिरियं सेरेगेय्ये तत्सरो-
जानने तन्न लोल नयनोत्पलमाले नृपंगे मालेयं
तानोसेदिक्किदळ्निखिल राजकुलं मनमिक्कुवन्नेगं ॥ ४४ ॥

आ राजन्यकमिरेक-* न्यारत्नं रूपुगरेदोडं निजपुण्य
प्रेरणेयिं कैसार्द-* त्ता रघुवीरंगे पुण्यदोळ् पुरुडुंटे ॥ ४५ ॥

अेत्तिदुवातपत्रशत मिक्किदुवागळे हेमचामरं
मुत्तिन सेसेयं तळिदरंगनेयर् गगनांतराळमं

के हार को नीचा दिखानेवाला सौंदर्य था। ऐसी कैकेयी जब अपने हाथों में नवरत्न माला लिए आई तो ऐसी प्रतीत हुई मानो कामपाश को लिए कामदेव की इच्छा ही सम्मुख खड़ी है। ४२ --उस समय उपस्थित राजाओं की विरुदावली, वंशकीर्त्ति आदिका बखान कर--कंचुकी ने क्रमानुसार राजकुमारों की ओर इशारा किया तो उन सबको देखकर भी कैकेयी की दृष्टि कहीं नहीं रुकी। ४३ उपस्थित राजकुमारों को पारकर आने के फलस्वरूप थकी हुई आँखों को दशरथ के देहसौंदर्य ने आकर्षित किया तो उसने नील कमल-माला सदृय अपनी आँखों के साथ पुष्पहार को समस्त राजकुमारों के मन को मुरझाकर दशरथ के गले में डाल दिया। ४४ इतने राजकुमारों के होते हुए भी उसने वेषपरिवर्तित दशरथ के गले में ही स्वयंवर की माला पहनाई तो इससे यही सिद्ध हुआ कि भाग्य के साथ कोई स्पर्धा नहीं कर सकता। ४५ पुष्पमाला पड़ते ही दशरथ के सिर के ऊपर सौ छतरियाँ फैलाई गईं। सोने के चामर से डुलाकर स्त्रियों ने अक्षत फेंके। उत्सव के बाजों (वाद्यों) का तुमुल घोष आकाश में छा गया। ब्राह्मणों के मुख से निकलकर मंगलमय मंत्रध्वनि गुंजरित

मुत्तिदुदुन्सवानक रवं द्विजमंगळ मंत्र नादमु-
ण्मित्तिनितुं विभूति पतिगादुदु बालिकॆ सूडॆ मालॆयं ॥ ४६ ॥

अंतातंगॆ कन्नॆ कैसार्वुदुं—

बालिकॆ मुग्धॆ तक्कुदरियळ् पलरं पॆरिगिक्कि सूडिदळ्
मालॆयनाकॆयं कळॆदुकॊळ्वुदु देसिगनं तगळ्वुदी
कालविळंबमेवुदॆनुतुं रणबालकश समस्त भू
पालक बालकर् कदनकेळिगॆ मच्चरदिंदॊडर्चिदर् ॥ ४७ ॥

अनरण्य प्रियनंदनं दशरथं साकेतनाथं शरा-
सन विद्यागुरु वीरनॆंदरिदुदिल्लेकाकि सामान्यनॆं-
दनितुं राजसमाजमाजिगुरिदॆय्तंदत्तु नीगॆत्तु बॆ-
ळ्तनदिं कत्तरिवाणियं जडजनं कैगुत्तलेळ्तिर्पवोल् ॥ ४८ ॥

अंतु रण पटह पटु निनदमॊदवॆ विळय जलधियंतॆ नॆलॆयिं
तळर्द राजकुलमं कंडु कैकॆय जनकं भयचकित चित्तनागि—

शुभमति पूडितंदु रथमं तडॆयल् पदनल्तु सार्मदिं
शुभमनॊडर्चलां नॆरॆवॆनॆरिसि कैकॆयनी वरूथमं
सभॆयनगल्दु पोपुदॆनॆ केळ्दिनिसं नसुनक्कु भूभुज
प्रभु नुडिदं मुखॆंदुकिरणं निमिर्वंतिरॆ दंतकांतिगळ् ॥ ४९ ॥

हुई। ४६ —इस तरह उसे कन्या मिली तो, यह (कन्या) नादान है, योग्य-अयोग्य को नहीं समझती। हम सबको न देखकर इसने इस सामान्य मनुष्य को माला पहनाई। इस कैकेयी को वश में लेकर उस (दशरथ) को भगा देने में देरी नहीं करनी चाहिए। ऐसा सोचकर युद्धप्रिय राजकुमार आपस में विचार विनिमय करके युद्ध के लिए तैयार हो गये। ४७ यह जाने बिना कि यह सामान्य मनुष्य-सा लगनेवाला व्यक्ति अनरण्य का प्रिय पुत्र दशरथ है जो धनुर्विद्या का गुरु होने के साथ वीर भी है, और यह सोचकर कि यह अकेला एवं अल्प शक्तिवाला है, राजकुमार उससे युद्ध करने के लिए उसी तरह तैयार हुए जैसे झोंकेमात्र से काटनेवाली जलधारा को मूर्ख अपनी बेवकूफी से छूने का प्रयत्न करते हैं। ४८ जब रणभेरी की ध्वनि सुनाई पड़ी तो प्रलयकाल के समुद्र के समान क्रुद्ध राजकुमारों को देखकर कैकेयी के पिता अत्यन्त भयभीत हुए। जब शुभमति मंत्री रथ को तैयारकर युद्ध के लिए उद्यत हुआ तो कैकेयी के पिता ने उसे रोककर कहा—"युद्ध से लाभ नहीं, मैं समझा-बुझाकर इनके

आनें कलंकुवंतें कौळनं बिडदानें कलंकुवें करु-
त्तीनेरेदांत राजकवनोंदिनिसं नडे नोळ्पुदेंदु पं-
चाननदंतें गर्जिसि रघूद्वस्नेरि वरूथमं घन-
ज्ञानिनदं भंयगोळिसें जेवोडेदं निज चापदंडमं ॥ ५० ॥

अतिशयमागें तन्न मुखचंद्रबलं मणिमेखलारवं
श्रुतिपथमं पळंचें जय डिंडिमनिस्वनदंतें मेलुदु-
द्गत जयकेतुवं मिगें मनोरथ सारथी कैकें बंदु भू-
पतियोडनेरिदळ् रघुमना रघुवीरन वीरलक्ष्मिवोल् ॥ ५१ ॥

आगळकाल जलधरंगळंतें निखिल नृपसुतर् सुत्तिमुत्ति शरवर्षमं करेयें—

तागें सरल पाविन पल्
तागिदवोल् मूर्छेवोगें सारथी रथमं
बेगं चोदिसिदळ् वधु
रागरसं दशरथंगें नेलेवेर्चुववोल् ॥ ५२ ॥

मीरदे कीरदे नेणं * तोरिददेंसेगाकेंगं हयक्कं चित्तं
बेरेल्लेंनें परिदुदु जव- * नेरिद रथमितिदेंनें रथं दशरथना ॥ ५३ ॥

क्रोध को शांत करूँगा। तुम कैकेयी को इसमें बिठाकर सभा को त्याग दो"। इस बात को सुनकर दशरथ अपने मुखचंद्र की दन्तकांति को चमकाते हुए मंद मुस्कराकर बोले। ४९ आप देखते रहिए, मैं अकेले ही उसी तरह तहस-नहस करूँगा जिस तरह मदमाता हाथी सरोवर को मथ डालता है। इतना कहकर सिंहगर्जना करते हुए जब दशरथ ने रथ पर चढ़कर धनुष की प्रत्यंचा को ध्वनित किया तो उस ध्वनि से शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न हो गया। ५० जिसका मुखचंद्र सेना के समान था, माणिमेखला की ध्वनि जयभेरी की ध्वनि के समान आकाश को स्पर्श करती थी, तथा शरीर से लिपटा हुआ कपड़ा विजय पताका के समान दिखाई देता था, ऐसी कैकेयी दशरथ के वांछित सारथी के समान और उसकी जयलक्ष्मी की तरह आकर रथ पर सवार हो गई। ५१ —तब राजकुमारों ने उसी तरह बाणों की वर्षा की जिस तरह अकाल के बादल बरसाते हैं। शरीर पर बाणों के लगने से, सर्पदंतक्षत (साँप के डसने) से मूर्छित-सा दशरथ मूर्छित हुआ। सारथी कैकेयी ने रथ को युद्ध-भूमि में तेज दौड़ाया। ५२ जब कैकेयी ने बागडोर हाथ में ली तो दशरथ

देसे मसुळ्वन्नेगं मसगि राजतनूभवरेच्च बाणमं
पोसमसेयंबिनि कडिदु कळ्तलेयं बेदरट्टि कण्गगु-
विसुविन मंडलक्के परिवेषमदाय्तेने तीव्रतेजमं
पसरिसि कण्गे कुंडलित चापमगुर्विसिदं महीभुजं ॥ ५४ ॥

केलर वरूथमं केलर वाजिगळं केलरुग्रबाणमं
केलर किरीटमं केलर चापमनिर्कडि माडि तन्न दो-
र्बलद पोडर्पु जीयेनिसे मार्पडेमं कोललोल्दनिल्ल मे-
य्गलि रघुवीर नाथन शराशन विद्येगिदाव विस्मयं ॥ ५५ ॥

गरियिं सोर्चिदुदेने कें-
गरियंबेळबट्टे राजसुत संदोहं
गरि सोंकदे बेळ्ळेरलेगे
गरि मूडिद तेरदि नोडि पोदत्तागळ ॥ ५६ ॥

मृगराजंगगिदोडुवानेगडुपं कैकोंडु यूधादिपं
मगळ्दुं सिंहद मेले पाय्व तेरदिं हेमप्रभं राजसू-
नुगळं तन्नोडकूडिकोंडु करेदं ज्याघात मेघध्वनि-
स्थगिताशामुखनन्मुखांशु चपलावेगं शरासारमं ॥ ५७ ॥

का रथ कैकेयी और घोड़े की इच्छा के अनुसार शत्रुसेना पर यमराज के रथ की तरह दौड़ा। इतने में दशरथ मूर्छावस्था से जागा। ५३ राजकुमारों द्वारा शौर्य के साथ दिगंतों के छोरों तक छोड़े गए बाणों को दशरथ ने अपने नये तेज बाणों से काटकर अंधेरे को भगानेवाले सूर्य के तेज के समान विभिन्न दिशाओं में बिखरे हुए राजाओं के साथ भयंकर युद्ध किया। ५४ किन्हीं के रथों को, तो किन्हीं के घोड़ों को; कइयों के बाणों को; तो कइयों के मुकुटों को; और अन्यों के धनुष को तोड़-तोड़कर अपने बाहुबल की क्षमता दिखाते हुए भी, शत्रुसेना को न मारकर बचा लिया। बलिष्ट दशरथ की धनुर्विद्या के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ५५ तीव्रता से निकले हुए लाल परवाले बाणों के लगने से पहले ही राजकुमारों का समूह इस प्रकार भाग गया जैसे भयभीत हिरण भागते हैं। ५६ सिंह से भयभीत होकर भागते हुए हाथियों को देखकर जिस तरह उनका मुखिया (हाथी) पुनः सिंह पर आक्रमण करता है, उसी तरह हेमप्रभ नामक राजकुमार भागनेवालों को उकसाकर, और उन सबको अपने साथ लेकर घनगर्जना करते हुए विद्युत्शक्ति के वेग से दशरथ पर बाणप्रहार करने लगा। ५७

यस्तो बिन्ति गरी प्रणाम् वरिपरी घुम्दै भरत्ले गऱ्या ।
आफ्ना साफि खराउ दी प्रभुजिले सब्ताप्भरत्काहऱ्या।।११२।।
फेरी बिन्ति गऱ्या तहाँ भरतले लौ फिर्दछू फिर्न ता ।
चौधै वर्ष समाप्ति पारि नफिऱ्या मर्न्याछु साँचै म ता ।।
यो बिन्ती सुनि लौ भनी भरतका साम्ने हुकूम् भो तहाँ ।
कैकेयी रघुनाथका चरणमा रूँदै परी खुप् तहाँ।।११३।।
हे नाथ् दुर्बुद्धि आई अति फजिति दियाँ राज्यको घात् गराई ।
मायाले मोह पार्दा मन पनि भुलिगै मेरि बुद्धी हराई ।।
क्यारूँ नाथ् ! आज रुन्छू विपति गरिगयो आज यो चेत पायाँ ।
कठ्पुत्ली झैं नचाउँ छिन् त्रिभुवन कन सब् धन्य छन् तिम्रिमाया।११४।
मेरो माया छ छोरा जन धनहरुमा यो सबै खैंचिदेऊ ।
दुर्बुद्धी हो पछीं ता शरण परि भनी खुप् कृपा राखिलेऊ ।।
कैकेयी येहि पाठ्ले स्तुति गरि हरिको पाउमा शीर धारिन् ।
हे नाथ् आई शरण्मा परि भनि करुणा राख यो बिन्ति पारिन्।।११५।।
हाँसी सीतापतीले पनि अभय दिया जो भन्यायाँ भन्यौ सो ।
दोष् तिम्रो छैन यस्मा बुझ तिमि मनले मेरि इच्छा त हो यो ।।

अपनी पवित्र खड़ाऊँ देकर प्रभु ने भरतके सारे मानसिक ताप का हरण कर लिया। ११२ भरत ने पुनः विनती करते हुए कहा—लौटने के लिए तो मैं लौटता हूँ परन्तु चौदह वर्ष समाप्त कर यदि आप न लौटे तो मैं निश्चय ही मर जाऊँगा। यह विनती सुन कर लौटने का आश्वासन देते हुए राम ने भरत को आज्ञा दी। कैकेयी भी रोती हुई रघुनाथ के चरणों में गिर पड़ी। ११३ हे नाथ ! मैंने दुर्बुद्धि के कारण राजा को आघात पहुँचा कर घोर विपत्ति ढाई। माया के मोह में पड़कर मेरा मन भ्रमित हो गया और मेरी बुद्धि का नाश हो गया। क्या करूँ रघुनाथ! विपत्ति आने पर आज रोती हूँ। आज यह समझ आयी है। हे त्रिभुवननाथ! आप सबको कठपुतली के समान नचाते हैं, आपकी माया धन्य है। ११४ मेरा मोह जन-धन में है, यह आप जब चाहें खींच लें और जब आपकी इच्छा हो तब दुर्बुद्धि व्याप्त हो जाय; बाद में शरणागत जान कर मेरे ऊपर कृपा करें। यह स्तुति करके कैकेयी हरि के सामने झुक गयी और उनके चरणों में अपना सिर रख कर कहने लगी--हे नाथ! मैं आपकी शरण में आयी हूँ, मुझ पर करुणा दृष्टि रक्खें। ११५ कैकेयी ने जो कुछ भी किया था, हँस कर

मन्मा सन्तोष पाऊ मकन दिनदिनै सम्झँदै दिन् बिताऊ।
छुट्नन् सब् कर्म तिम्रा रतिभर मनमा शोक् नराखेर जाऊ।।११६।।

कैकेयी करुणा बुझी खुशि भई बीदा प्रभूथ्यैं भइन्।
श्रीराम्को चरणारविन्द मनले भज्दै अयोध्या गइन्।।
सब् लश्कर्हरु ली भरत् पनि बिदा भै फेर् अयोध्या गया।
सब् लश्कर्हरुलाइ राखि घरमा आफू फरक्भै रह्या।।११७।।

नन्दीग्राम्मा सन्याका भुमिशयन गरी रोज् फलाहार् गन्याका।
एक् गट्ठा सब् जटाको गरिकन ति खराउ गादिमाथी धन्याका।।
गर्थ्या सब् राज्यको काम् तपनि सब कुरा गादिमा बिन्ति गर्दै।
यस्तै रीत्ले बिताया दिन भरतजिले राममा चित्त धर्दै।।११८।।

केही दिन् चित्रकूट्मा बसिकन रघुनाथ् बाल्मिकीथ्यैं बिदा भै।
जान्छू वन्मा म फिर्छू भनिकन खुशिले अत्रिका आश्रमै गै।।
अत्रीका पाउमा शिर् धरिकन म त हूँ राम् भनी नाम् बताया।
श्रीराम्का वाणि सुन्दा मन अति खुशि भै अत्रिले हर्ष पाया।।११९।।

सीतापति ने भी उसके कृत्यों को क्षमा करके उसे अभयदान दिया और कहा कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। यह मेरी ही इच्छा है। यह मन में सोचकर मेरी ओर से सन्तोष धारण करो और मेरा स्मरण करती हुई दिन व्यतीत करो। सब अपराधों से तुम्हारी मुक्ति होगी, तुम मन में किंचित् मात्र भी शोक न करो और जाओ। ११६ कैकेयी भी राम की करुणा को समझ कर प्रसन्न हुई और प्रभु से विदा लेकर अपने मन में राम के चरणारविन्दों का भजन करती हुई अयोध्या चली गई। भरत भी सम्पूर्ण सेना सहित विदा लेकर अयोध्या चले गए। सारी सेना को घर में रखकर स्वयं दूसरे स्थान पर निवास करने लगे। ११७ भरत जी नन्दीग्राम में भूमि पर शयन करते। सदैव फलाहार ग्रहण करते। जटा को एक जूट करके बाँधते। खड़ाऊँ को अपनी गोद में रख कर सेवा करते तथा गद्दी पर स्थापित कर सविनय ध्यानपूर्वक राज्य के सभी कार्य करते। इसी प्रकार नियमित रीति से भरत जी ने राम के ध्यान में लीन हो दिन व्यतीत किए। ११८ कुछ दिन चित्रकूट में रहकर रघुनाथ ने बाल्मीकि से वन जाने के लिए विदा ली। उपरांत अत्यन्त हर्ष के साथ अत्रि मुनि के आश्रम में जाकर उनके चरणों में सिर नवा कर अपना परिचय दिया। श्रीराम की वाणी सुन, मुनि को बड़ी प्रसन्ता हुई। ११९ सीतापति की पूजा कर ऋषि ने उनके चरणों

पूजा सीतापतीको गरिकन ऋषिले पाउमा बिन्ति लाया ।
बृद्धा छन् पत्नि मेरी सकल विषयमा एक् रती छैन माया ॥
भित्रै छन् आज दर्शन् दिन मढुलिविषे भित्र सीताजि जाउन् ।
सीताजीलाइ पाई अब त ति बुढिले जन्मको सार पाऊन् ॥१२०॥
अत्रीको बिन्ति सूनी हुकुम पनि दिया लौ सिता भित्र जाऊ ।
अत्रीकी पत्नि भेटीकन अब तिमिले जल्दि फर्केर आऊ ॥
आफ्ना नाथ्को हुकूम् यो सुनिकन खुशि भै भित्र सीताजि जाई ।
भेटिन् बृद्धा बहुत् भैकन बसिरहन्या अत्रिकी पत्निलाई ॥१२१॥
सीताले पाउमा शिर् धरिकन बहुतै प्रेम् बुढीमा बढाइन् ।
जोर् जोर् कुण्डल् र सारी दिइकन बुढिले अङ्गराग् फेर् चढाइन् ॥
यस्ले शोभा निरन्तर् दृढ पनि रहला यो पनी बिन्ति लाइन् ।
सीताजीलाइ आशिष् दिइ ति अनसुयाले बहुत् हर्ष पाइन्॥१२२॥

सीता र लक्ष्मण सहित् गरि रामलाई ।
भोजन् म दिन्छु भनि खुप्सित चीज् बनाई ॥
भोजन् गराइ रघुनाथकि जानि माया ।
ताहाँ सपत्नि भइ रामकि कीर्ति गाया ॥१२३॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

में विनती की कि मेरी पत्नी वृद्धा है और उसके मन में किंचित् मात्र भी भक्ति नहीं है । अतः दर्शन देने के लिए सीताजी अन्दर पधारने की कृपा करें, जिससे सीताजी के दर्शन प्राप्त कर बुढ़िया को जन्म के फल प्राप्त हो जायें । १२० अत्रि की विनती सुन कर श्रीराम ने सीता को अन्दर जाने की आज्ञा दी । अत्रि की पत्नी से भेंट करके अब तुम शीघ्र ही लौट आओ । अपने नाथ की आज्ञा पाकर प्रसन्न हो सीता अन्दर गईं और अत्यन्त वृद्धा अत्रि-पत्नी से भेंट की । १२१ सीता ने पैरों पर सिर रख कर वृद्धा के प्रति अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित किया । अत्रि-पत्नी ने सीता जी को जोड़-कुण्डल और साड़ी देकर उबटन का लेप किया और कहा कि इससे तुम्हारे शरीर की शोभा स्थिर रहेगी । इस प्रकार सीता जी को आसीस देकर अनसूया को अत्यन्त हर्ष प्राप्त हुआ । १२२ सीता एवं लक्ष्मण सहित राम को भोजन कराने के लिए विविध प्रकार के भोजन तैयार किये । भोजन करा के रघुनाथ की माया को समझ कर ऋषि तथा उनकी पत्नी दोनों ने राम कीर्ति के गीत गाये । १२३

अयोध्याकाण्ड समाप्त

अरण्यकाण्ड

अत्रीका आश्रमैमा बसि रघुपतिले प्रेमले दिन् बिताई ।
दोस्रा दिनमा सबेरै उठिकन बनमा जान मन्सुब् चिताई ।।
अत्रीजीका नजीक्मा गइकन अब ता जान्छु बीदा म पाऊँ ।
रस्ता यो जाति होला भनिकन कहन्या एक् अगूवा म पाऊँ ।। १ ।।

सीताराम्को हुकूम् यो सुनिकन ऋषिले भन्दछन् क्या बताऊँ ।
सब्को रस्ता त देख्न्या यहिं हजुर भन्या कुन् अगूवा खटाऊँ ।।
चिन्छू लीला हजुर्को तरपनि अगुवा याहिं अस्सल् खटाई ।
यै मर्जी पूर्ण गर्नाकन पनि अगुवा आज दिन्छू पठाई ।। २ ।।

अत्रीले बिन्ति येती गरिकन अगुवा शिष्य धेरै खटाया ।
केही रस्ता त आफै पनि पछि पछि गै रामलाई पठाया ।।
एक् कोश् तक् पौचँदामा बडि नदि बहँदी नाउले तर्नुपर्न्या ।
मिल्थिन् त्योतारिफर्क्या मढितिर ऋषिकाशिष्य सब्फिर्नु पर्न्या।।३।।

सीताराम् बनमा पुग्या बन थियो साह्रै खजित्को तहाँ ।
बाघ् भालू अरु दुष्ट राक्षसहरू डुल्छन् निरन्तर् जहाँ ।।

अत्रि के आश्रम में रघुपति ने प्रेम पूर्वक दिन व्यतीत किया । दूसरे दिन सबेरे उठकर वनगमन का निश्चय कर अत्रि जी के निकट जा कर विदा माँगी और कहा कि उत्तम पथ-प्रदर्शक की भी व्यवस्था कर दें । १ सीताराम के यह आदेश सुन कर ऋषि कहते हैं कि जब श्रीमन् स्वयं ही सब को पथ-प्रदर्शन करने वाले हैं तो मैं आपके लिए किस पथ-प्रदर्शक को भेजूँ । आपकी लीलाओं को मैं भली प्रकार जानता हूँ, फिर भी मैं आपकी इच्छा-पूर्ति के लिए इस समय एक पथ-प्रदर्शक को भेज दूँगा । २ अत्रि यह विनती करके कुछ दूर तक स्वयं ही राम के पीछे-पीछे गये और कई शिष्यों को पथ-प्रदर्शनार्थ नियुक्त कर दिया । एक कोस चलने के पश्चात् एक बड़ी नदी को नाव द्वारा पार करवा कर ऋषि के सब शिष्य आश्रम की ओर लौट पड़े । ३ सीताराम जिस वन में पहुँचे वह अत्यन्त घना था, जहाँ बाघ, भालू तथा अन्य दुष्ट राक्षसगण निरन्तर घूमा करते थे । वहाँ पहुँच तत्पर होकर प्रभु जी

ताहाँ पौंचि हुकूम् भयो प्रभुजिको भाई ! तयारी भई ।
सीताका म अगाडि हिंड्छु तिमिले हिंड्नू पछाडी रही ॥ ४ ॥

यस्ता बात् गरि राम लक्ष्मण तहाँ हिंड्थ्या तयारी भई ।
एक् सुन्दर बनमा तलाउ मिलिगो ठूलो छ कोश् वन् गई ॥
ठण्डा जल् तहिं पान् गरेर रघुनाथ् छायाँ बस्याथा जसै ।
आयो ताहिं विराध राक्षस ठुलो डर् दीन लाग्यो तसै ॥ ५ ॥

को हौ स्त्री पनि साथमा छ किन यो आयौ बड़ा वन्महाँ ।
कस्तो सुर् मनमा छ फेर् अब उपर् जानू छ इच्छा कहाँ ॥
मैले सुन्दर गाँस् बनाउन असल् मान्याँ र सोध्याँ यहाँ ।
सब् नाम् कामस मेत् बताउ तिमिले जुन् काम् छ जान्छौ जहाँ॥६॥

राक्षस्का इ वचन् सुनी प्रभुजिले नाम् काम् बताया सबै ।
बाँच्ने मन् छ भन्या सिता र हतियार् छोडेर जाऊ उसै ॥
यस्तो बोलि सिताजिलाइ लिन सुर् बाँधेर राक्षस् जसै ।
दौडेथ्यो रघुनाथले पनि ति हात् दूवै गिराया तसै ॥ ७ ॥

जस्सै हात गिन्या तसै त रिसले खाँ रामलाई भनी ।
दौडन्थ्यो मुख बाइ फेर् प्रभुजिले काट्या ति गोडा पनि ॥

ने आज्ञा दी कि भाई लक्ष्मण ! तुम सीता के पीछे-पीछे हो लो, मैं आगे-आगे चलता हूँ । ४ इस प्रकार बातचीत कर राम-लक्ष्मण तत्परता से चल पड़े । लगभग एक कोस चलने के पश्चात् एक सुन्दर वन में पहुँचे जहाँ एक तालाब मिला । शीतल जल-पान कर जैसे ही रघुनाथ एक वृक्ष के नीचे उसकी छाया में बैठे कि एक बड़ा विशालकाय भयंकर राक्षस वहाँ आकर उन्हें भयभीत करने लगा । ५ तुम कौन हो जी जो स्त्री के साथ इस बीहड़ वन में आये हो । तुम्हारे मन में क्या इच्छा है और आगे कहाँ जाना चाहते हो ? सब नाम, काम सहित, किस कार्य वश कहाँ जाओगे इत्यादि बातें सविस्तार बताओ तुम्हें अपने उदर का आहार बनाने की इच्छा हुई है इसी कारण से पूछ रहा हूँ । ६ राक्षस के इन वचनों को सुन कर राम ने नाम तथा काम सब बता दिया । राक्षस ने कहा, यदि जीवित रहना चाहते हो तो सीता और अस्त्रों को छोड़ कर चले जाओ । इतना कहकर मन में निश्चय कर के राक्षस सीता को पकड़ने के लिए दौड़ा, वैसे ही रघुनाथ ने उसकी दोनों भुजाओं को काट दिया । ७ भुजाएँ कट कर गिरते ही राक्षस क्रोधित होकर जैसेही राम को भक्षण करने के लिए दौड़ा वैसेही प्रभु ने उसके पावों को भी काट

हात् गोडा नहुँदा त सर्प सरिको पस्न्यो भुमीमा जसै ।
हात् गोडा सब कटिया तब पनी घस्रेर आयो तसै ।। ८ ।।

घस्री घस्रि उ सर्दथ्यो प्रभुजिले काटचा तहाँ शिर् पनि ।
विद्याधर् गण हो छुटोस् अब सराप् जाओस् परम्धाम् भनी ।।
राक्षस् देह मन्या सराप् पनि टन्यो विद्याधरै फेर् भयो ।
श्रीराम्को स्तुति खुप् गरेर खुशि भै फेर् स्वर्गलोक्मा गयो ।।९।।

जस्सै स्वर्ग विराध् गयो प्रभुजिले रस्ता वनैको लिया ।
पालन् गर्छुम योगिको अब भनी मन्मा दया खुप् लिया ।।
ध्यान् गर्दै शरभङ्गजी बनमहाँ जाहाँ बस्याका थिया ।
ताहीं श्रीरघुनाथजी खुशि हुँदै पौंचेर दर्शन् दिया ।।१०।।

ताहीं श्रीशरभङ्गले प्रभुजिमा तन् मन् वचन् सब् धरी ।
आफ्नू कर्म जती थियो तहिं ततो सम्पूर्ण अर्पण् गरी ।।
अस्सल् ताहि चिता बनाइ हरिको दर्शन् नजर्ले गरी ।
ताहाँ देह दहन् गरी चलिगया संसार सागर् तरी ।।११।।

मुक्ति श्रीशरभङ्गको जब भयो तस्सै मुनीश्वर्हरू ।
आया भेट्न भनी बहुत् खुशि भई बन्मा थिया जो अरू ।।

दिया । हाथ-पाँव से रहित हो कर वह सर्प के समान पृथ्वी पर लोटने लगा, फिर भी वह खिसक-खिसक कर आगे बढ़ा । ८ इस प्रकार खिसकते हुए आता देख प्रभु ने उसका सिर भी काट दिया । वह पहले विद्याधर था । अब श्राप से मुक्त हो उसका राक्षस शरीर भी मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसने पुनः विद्याधर के रूप को धारण किया, तथा अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक श्रीराम की स्तुति कर स्वर्गलोक को चला गया । ९ विद्याधर के स्वर्ग चले जाने के बाद प्रभु जी ने वन का मार्ग लिया । दया से भर कर योगियों के कष्ट निवारण के लिए श्रीरघुनाथजी श्रीशरभंग का स्मरण कर के उनके आश्रम में जाने के लिए उस वन की ओर चल दिए । १० श्रीशरभंग जी ने वहाँ प्रभु में ही अपना तन, मन, धन से ध्यान लगा कर कर्म-मुक्त होकर एक उत्तम चिता का निर्माण करके हरि के दर्शन किये । तदुपरान्त शरीर को अग्नि में समर्पित कर संसार-सागर तर कर चले गये । ११ श्रीशरभंग जी की मुक्ति होते ही अन्य मुनीश्वरगण जो वन में थे प्रसन्न चित्त से भगवान् से भेंट करने के लिए आये । उन्हीं को अपना स्वामी जान कर खूब स्तुति की ।

हात्जोरी स्तुति खुप् गऱ्या ति ऋषिले ख्वामित् इनै हुन् भनी ।
कोमल् चित्त गरी तहाँ नजरले हेऱ्या प्रभूले पनि ।। १२ ।।
बिन्ती सब ऋषिले गऱ्या हजुरमा हाम्रो विपत्ती पनि ।
देख्या पूर्ण दया हुन्या थिइ बहुत् आपत् रह्याछन् भनी ।।
जाऔं सब् ऋषिका मढीमढिविषे वाहीं गई यो दया ।
होला चित्तविषे भनी ति ऋषिले भन्दा प्रभूजी गया ।। १३ ।।
देख्या तेस् वनमा अनेक् पृथिविमा खप्पर र सोध्या तहाँ ।
कस्का खप्पर हुन् अनेक् नजरले देख्छू मऱ्याका यहाँ ।।
श्री सीतापतिका वचन् सुनि तहाँ बिन्ती ऋषीले गऱ्या ।
ई शिर् हुन् ऋषिका यहाँ छल परी धेरै ऋषीश्वर् मऱ्या ।।१४।।
राक्षस्का छलले बहुत् ऋषि मऱ्या भऱ्या कुरा यो सुनी ।
ताहाँ सब् ऋषिलाइ राखि सबका साम्ने प्रतिज्ञा पनि ।।
सब् राक्षस्हरुको म नष्ट गरुँला भऱ्या प्रभूले गऱ्या ।
खूशी मन् हुनगो र ताहिं ऋषि ता आनन्दमा सब् पऱ्या ।।१५।।
केही वर्ष बिताइ ताहिं हरिले सब् योगिको ताप् हऱ्या ।
माया फेरि सुतीक्षणका उपर भै प्रस्थान् प्रभूले गऱ्या ।।
जाहाँ भक्त सुतीक्षण छन् तहिं गई दर्शन् प्रभूले दिया ।
पूजा पूर्ण गरी सुतीक्षण ऋषिले राम्लाइ मन्मा लिया ।।१६।।

प्रभु ने भी शान्त एवम् कोमल हृदय से उन्हें देखा । १२ सब ऋषियों ने प्रभु के समक्ष विनती की कि हमारी विपत्तियों को देख कर, हे रघुनाथ ! आप अवश्य दया करेंगे । आपत्ति से पीड़ितों के मठों में स्वयं जा कर दया करने की कृपा करेंगे । तदनुसार प्रभु जी सभी ऋषियों के आश्रमों में गये । १३ उस वन में पहुँच कर अनेक मृतकों की खोपड़ियों को बिखरा हुआ देखकर प्रभु को यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि ये किसकी खोपड़ियाँ हैं । श्रीसीतापति के वचनों को सुन कर ऋषि ने विनती की कि ये शीश छल द्वारा मारे गये ऋषीश्वरों के हैं । १४ राक्षसों द्वारा छल से मारे गये ऋषियों की मृत्यु का कारण जान कर, सभी उपस्थित ऋषियों को एकत्र करके उनके समक्ष प्रभु ने प्रतिज्ञा की कि मैं सब राक्षसों को नष्ट कर दूँगा; यह सुन कर ऋषिगण अत्यन्त आनन्दित हुए । १५ कुछ वर्षों तक वहीं रह कर हरि ने सब ऋषियों के कष्टों का हरण किया । इसके पश्चात् सुतीक्षण के ऊपर कृपा करने हेतु प्रभु ने वहाँ से प्रस्थान

सयुज्यै मुक्ति मिल्ला तिमिकन सुन यो देह जैले त छुट्ला ।
भन्या आज्ञा प्रभूको सुनिकन अब ता कर्मको पाश टुट्ला ॥
भन्या यो मन् ऋषीको हुन गइ बहुतै चित्तमा हर्ष पाया ।
सीताराम्ले अगस्ती सित गइ कछु दिन् बस्न मन्ले चिताया ॥१७॥

प्रभूका साथैमा पछि पछि सुतीक्ष्णै पनि गया ।
अगस्तीका भाई सित पुगि त एक् रात् प्रभु रह्या ॥
ति अग्नीजिह्वा खुप् खुशि पनि भया ईश्वर भनी ।
चिनी ताहाँ तिन्ले विधिसित गऱ्या पूजन पनि ॥१८॥

तहाँ देखी सीतापति उठि सबेरै चलिगया ।
अगस्ती काहाँ छन् भनि खबर ली दाखिल भया ॥
अगस्तीले खुश् भै स्तुति गरि बहुत् मन् पनि धऱ्या ।
विराट् रूप्ले वर्णन् गरिकन त पूजा पनि गऱ्या ॥१९॥

सुन्दर् धनू र तरवार् सँग बाण् धऱ्याका ।
ठोक्रा त जोडि अघि इन्द्रजिले धऱ्याका ॥
ताहीं थिया सब दिया रघुनाथलाई ।
बिन्ती गऱ्या सकल भार् हर आज जाई ॥२०॥

किया । भक्त सुतीक्ष्ण को प्रभु ने दर्शन दिया । पूजा पूर्ण करके ऋषि सुतीक्ष्ण ने मन में राम का ध्यान किया । १६ राम ने विचार प्रगट किया कि इस शरीर से सायुज्य मुक्ति मिलनी चाहिए । देह से छुटकारा पाने की बात प्रभु से सुन कर वह अत्यन्त हर्षित हुए । उन्हें यह सोच कर बड़ा सन्तोष हुआ कि अब मैं कर्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाऊँगा । सीताराम ने अगस्त्य मुनि के पास जाकर वहाँ कुछ दिन रहने का विचार किया । १७ सुतीक्ष्ण भी प्रभु के साथ हो लिये । अगस्त्य के भाई के पास जा कर प्रभु एक रात वहाँ रहे । उन्हें ईश्वर जान कर अग्निजिह्वा मुनि भी अत्यन्त प्रमुदित हुए । उन्होंने श्रीराम का पूजन विधिवत किया । १८ वहाँ से उठ कर सीतापति सबेरे ही चले गए । अगस्त्य जी के आश्रम का पता लेकर वहाँ पहुँच गए । अगस्त्य ने भी मन ही मन ध्यान धर के स्तुति की और विराट रूप से पूजा भी की । १९ वहाँ पर अगस्त्य ने इन्द्र का रक्खा हुआ सुन्दर धनुष और बाणों से भरे हुए तरकस की जोड़ी श्रीरघुनाथ को अर्पण की और विनती की कि आज ही जाकर पृथ्वी का सम्पूर्ण भार हरण करो । २०

राज़ु सुंद हाल

वदुनि लोंग राज़ु येलि अहवाल बूज़ुन ।
वनुनि लोंग राज़ु पनुनिस ईशरस कुन ॥
वोंदुन वाराह तु जामन कर्यन पारा ।
वनुनि लोंग क्यासना कोंत गंयि अवारा ॥
वसिष्ठन तस दोंपुन क्याह छुख च़ु साद ।
यि वुछ दयिकार यथ क्याह ओस वाद ॥
गोंबुर ज़नमस च़ें निश आमुत नारायन ।
वरन छुय शीश नागुक पानु लंखिमन ॥
शतुरगुन बरत गांमित्य शेंखु च़ुकरस ।
छ सीता पानु आमुच़ बूम ज़नमस ॥ ५ ॥
कशफ़ छुख पानु आंदुत कौशल्या ।
बरुन छुय द्यन करुन छुय ज़नमु त्यागा ॥
कोंरुवुह तफ वारुयाह अंगनस हुमूवुह पान ।
वदान आंस आंदित टोठ्योस नारान ॥
दोंपुस तंम्य मंग गछी क्या कौंसु छय हान ।
दोंपुस तमि अख गोंछुम गोंबराह च़ें ह्युं जान ॥

राजा का हाल

अहवाल (वृत्तांत) सुनकर राजा (दशरथ) ख़ूब रोने लगे ओर वस्त्रों को फाड़कर अपने ईश्वर से कहने लगे कि वे (राम) मुझे असहाय बनाकर कहाँ चले गये ! तब वसिष्ठ ने उनसे कहा--आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? यह तो दैव का विधान था और इसी अवसर की सब को प्रतीक्षा थी । (आप नहीं जानते ?) आपके यहाँ तो (स्वयं) नारायण ने पुत्र बनकर जन्म लिया है और शेषनाग के वर्ण (भेस) में लक्ष्मण आये हैं । शत्रुघ्न और भरत शंख और चक्र के रूप हैं और स्वयं सीता ने भूमि के रूप में जन्म लिया है । ५ आप स्वयं कश्यप हैं और कौशल्या अदिति हैं । (अब) आप को (कुछ) दित निकाल कर इस जन्म को त्याग देना है । (आप जानते हैं) आप ने ख़ूब तप किया था और अग्नि को ख़ूब होम देकर उसे प्रसन्न किया था । आपकी पत्नी रो रही थी और स्वयं नारायण उस पर प्रसन्न हो गये थे । उन्होंने उससे कहा था--"माँगो, क्या चाहिए, किस बात की कमी है ?" (इस पर) उसने कहा था--"बस, आप जैसा ही अच्छा पुत्र मुझे चाहिए ।" उन्हें स्वयं राक्षसों का क्षय (नाश) कर

युन ओसुस पानु तस अवतार दारुन ।
करिथ ख्यय राखिसन रावुन छु गालुन ॥
तवय बापथ सपुन सु पानु वनवास ।
हीथा सीतायि हुंदि लंकायि करि डास ॥ १० ॥
तिथुय राज़स सपुन दरहम तु बरहम ।
वोंदुन वाराह तु सांपुन गाश तस कम ॥
ति बूज़िथ राज़ु यंत्र सांपुन वोंदासी ।
तंमिस बोंनु प्राक ज़नमुक्य पाप आसी ॥
दपन पथ कुन दोह अकि वन गोमुत ओस ।
तती वनु पापु वशि सुत्य अथुशर गोस ॥
पकन अज़ दूरि तंम्य बोंनु डीठ छाया ।
गुमान तस यी सपुन कोंह क्याह बलाया ॥
कोंडुन तरकश द्युतुन तस तीर दारिथ ।
छुनुन तंम्य बेख़बर रेशज़ादु मारिथ ॥ १५ ॥
वुछुन रेश बालुकाह अख पोन्य सारन ।
तंमिस तमि तीरु सुत्य ज़ख़्मी गंमुत्र तन ॥
वदन वोंनुनस वनुम वोंन्य क्याह करन तिम ।
पनुन बब मोज नाब्यना गामुत्य छिम ॥

रावण को नष्ट करने के लिए आना था, अतः (राम के रूप में) अवतार ले लिया। इसीलिए वे (स्वयं इच्छापूर्वक) वनवास को गये और सीताजी के बहाने लंका को ढहा डालेंगे। १० यह सुनकर राजा का मन डाँवाँडोल हो उठा और इतना रोये की आँखों का प्रकाश कम हो गया। यह सुन कर राजा बहुत उदास हो गये। (दरअसल) उन्हें पिछले जन्मां का यह फल (मिल रहा) था। कहते हैं पिछले जन्म में एक दिन वे वन में (शिकार खेलने) गये हुए थे। वहाँ वन में पापवश उनसे एक भूल हो गई। दूर से उन्होंने नीचे एक छाया (चलती हुई) देखी। उन्हें गुमान (शक) हो गया जैसे कोई (जंगली) बला आ रही हो। तुरन्त तरकश से तीर निकालकर उन्होंने उसे दे मारा और बेख़बरी में उस ऋषि-ज़ादे (बालक) को मार डाला। १५ (निकट आने पर) उन्होंने पानी भरने के लिए आए हुए एक बालक को देखा जिसका तन उस तीर से ज़ख़्मी हो चुका था। (लोटते हुए) उसने कहा—मेरे बिना अब भला वे क्या करेंगे, मेरे माता-पिता अपंग हैं। अब आप ही मेरे बदले उनके (मेरे

च़ु गछ़ वोंन्य पानु ज़न बुय गोस दिख त्रेश ।
तिमन अदुह बाव तस क्याह आव दरपेश ।।
तिथय गव राज़ु पानस निशि न्यर आश ।
तिमन निश त्रेश ह्यथ गव ज़न पनुन गाश ।।
लंगिस तिम शानु छारुनि च़ीर्य क्यथ आख ।
बदल ज़ोनुख जिगरस सांपनिख चाख ।। २० ।।
प्रुछ़ुक तस छुक च़ु कुस अंस्य क्याह छि डेशन ।
अंछिन हुन्द गाश असि कोंत गव पोंज़ुय वन ।।
वनुन यामथ तिमन ह्योंत तंम्य पनुन पाप ।
वंसिथ पेंयि दोंनुवय तस यी दितुक शाप ।।
गोंबरु गोंबरुह करान योंत ताम गली प्रान ।
तसुन्द दर्शुन करुन रोज़ी च़ें अरमान ।।
तिथिस राज़स बदल सांपुन नु रेश्य शाप ।
च़ु कर इन्साफ़ वोंन्य वात्या करुन पाप ।। २४ ।।

दशरथु सुन्द्य व्यलाफ

वन्दयो मोंन्य बु पादन
छ़ांडुथो रामु रादन
व्यच़ार नांग्य वति लारय
नुनुरुकि तारु प्रारय

माता-पिता के) पास जाकर उन्हें पानी पिलाइए और मेरा सारा हाल कहिए कि मेरे साथ क्या घटना हुई है। इस पर राजा निराश होकर वहाँ चल दिये और उन्हें उनके नेत्रप्रकाश (पुत्र) की भाँति पानी पिलाने लगे। उन्होंने (श्रवणकुमार के माता-पिता ने) उनके शानों (कंधों) को टटोलते हुए देरी का कारण पूछा। (राजा को) अजनबी जानकर उन दोनों का जिगर चाक हो गया। २० उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं और हम यह क्या देख रहे हैं? हमारी आँखों का प्रकाश कहाँ चला गया है—सच-सच कह दीजिए। जब राजा ने अपने पाप का वृत्तान्त कहना शुरू किया तो वे दोनों (पृथ्वी पर) गिर पड़े और उन्हें शाप दिया—जब तक पुत्र-पुत्र करते तुम्हारे प्राण न गल जायें तब तक तुम्हारा पुत्र-दर्शन का अरमान न निकले। उस राजा तक के लिए जब शाप का प्रभाव बदल न सका, हे मनुष्य! तब (तू क्या चीज़ है) तू तो इन्साफ़ से काम ले और पाप न कर। २४

ब्रह्मु सरुह किन्य दिमय कन
छांडुथो रामु रादन ॥ १ ॥
अंछिन हुन्दि गाशि म्याने
खोश यिवुवुनि नुन्दुबाने
कांल्य रांवुम हिये तन
छांडुथो रामु रादन ॥ २ ॥
कशि तीर लोयथम मे
लशि छम नारु रेह
अशि फ्यरेन हंरुम तन
छांडुथो रामु रादन ॥ ३ ॥
महांइशि किन्य यिमु यो
हरुमोखु वंन्य दिमु यो
हमसु वारुह गंछिथ रटय वन
छांडुथो रामु रादन ॥ ४ ॥
चु रूदहम कथ शाये
क्रांकु नदी वोठ बु लाये
गंगु बलु युन छु आदन
छांडुथो रामु रादन ॥ ५ ॥

दशरथ का विलाप

तेरे पादों को चूम लूँ और तुझे रामरादन[1] में ढूँढूँ। व्यचारनाग के मार्ग में तुझे देखूँ, नूनर के पुल पर प्रतीक्षा करूँ और ब्रह्मसर के निकट बाट जोहता रहूँ—तुझे रामरादन में ढूँढूँ। १ ऐ मेरे आँखों के प्रकाश! मनमोहन लाड़ले, (तेरी जुदाई के कारण) मेरा तन पुष्प की भाँति मुरझा गया है—तुझे रामरादन में ढूँढूँ। २ तूने मुझे जो तीर लगाया है उससे मेरी यह देह अग्नि के समान दहक रही है। अश्रुकणों के निरन्तर गिरने से यह तन सूख गया है—तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ३ महोइशि की ओर से जाऊँ, हरमुख में तेरा रास्ता देखूँ और हंसवारुह में जाकर तुझे वन में देखूँ—तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ४ तू कहाँ छिप गया, मैं क्रांकुनदी में कूद

---

१. स्थान-विशेष। कवि की कल्पनानुसार श्रीराम ने यहीं पर वास किया था। यह स्थान रामरादन तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान तक पहुँचने के लिए विभिन्न पड़ावों का उल्लेख कवि ने इस गीत में किया है।

गोसु नो कॅन्ह मे चोनुय
दयन येलि बानु ज़ोनुय
चारु नो लान्य वदन
छांडुथो रामु रादन ॥ ६ ॥

च्रुज़य गोखो मे निशि दूर
यिज़े तेलि येलि गछ्यम सूर
वुज़े पोन्य नागु रादन
छांडुथो रामु रादन ॥ ७ ॥

नाव तन त्राव कीनु
बाव सिर दोंदमु सीनु
हाव मोंख थाव लादन
छांडुथो रामु रादन ॥ ८ ॥

बरनि बलु युथ नु रावय
रामु रामु क्रख बु त्रावय
आलव दिज़ि मे नादन
छांडुथो रामु रादन ॥ ९ ॥

न्यत्रन मंज़ रटय पाद
बुथ्य शीर किन्य दिमय नाद
मरुयो वुनि छु आदन
छांडुथो रामु रादन ॥ १० ॥

पड़ूँगा, फिर गंगुबल में सभी मिलेंगे--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ५ मुझे तुझसे कोई गिला नहीं है, दैव ने ही यह सब किया है, अदृष्ट को सहन करने में कोई चारा नहीं है--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ६ तू मुझ से दूर हो गया। अब उस समय आना, जब मेरा (तन) भस्म हो जाय। तब झरनों और स्रोतों का पानी भी उफन पड़ेगा--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ७ अब तू मन-मुटाव छोड़कर प्रसन्न मन से अपनी बात मुझसे कह। मेरा सीना जल रहा है। अब तू मुझे अपना मुख दिखा--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ८ बरनिबल पहुँचकर कहीं मैं खो न जाऊँ। मैं वहाँ ज़ोर-ज़ोर से राम-राम पुकारूँगा। मेरी आवाज़ों का प्रत्युत्तर देना--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ९ मैं नेत्रों में तेरे पाद ले लूँ और बुथ्यशीर में तुझे पुकारूँ। तेरे विना मैं मर जाऊँगा, अभी भी समय है--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। १० नारायणनाग

नारान नागु प्रारय
वांगुति जायि छ्रारय
प्रारय सुत्य सादन
छांडुथो रामु रादन ॥ ११ ॥

सिरियम छु गाश चोनुय
सुय छु प्रकाश चोनुय
सुय छु यूगु सादन
छांडुथो रामु रादन ॥ १२ ॥

रज़सुन्द मरुन तु वरथु सुन्द युन

वनुनि लोंग राज़ु याँ अहवाल बूज़ुन ।
करुनि लोंग ज़ार्य पनुनिस ईशरस कुन ॥
वोंदुन वाराह तु जामन कंरिन पारा ।
वनुनि लोंग क्या सना कति गोस अवारा ॥
वदुनि लोंग दरमु राज़न करमु यी ल्यूख ।
गंयस यी हाँ कौशल्यायि निश न्यूख ॥
दोंपुस तमि तोरुह क्याह कंरथम च्रे नीकी ।
यि कैंह ओसुय ति पुशरोवुथ ब कीकी ॥

में तेरी प्रतीक्षा करूँ, वांगुति स्थान में तुझे ढूँढूँ। साधुओं समेत तेरी प्रतीक्षा करूँ--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। ११ सूर्य में तेरा ही प्रकाश है और यह प्रकाश सर्वत्र है। वही 'प्रकाश' यह योग साध रहा है--तुझे रामरादन में ढूँढूँ। १२

राजा की मृत्यु और भरत का आना

यह सुनकर (कि रामचन्द्रजी लौटकर नहीं आ रहे हैं) राजा अपने ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। वे खूब रोये और अपने जामों (वस्त्रों) को चाक कर डाला। वे कहने लगे कि यह मुझे क्या देखना पड़ रहा है। रोते-रोते कहने लगे कि धर्मराज ने (शायद) यही (सब-कुछ) मेरे कर्म-लेख में लिखा था। इस पर उन्हें कौशल्या के पास ले जाया गया। उसने (कौशल्या ने) कहा--आप ने यह कौन-सी नेकी की जो अपना सब-कुछ कैकेयी के हवाले कर दिया। उसने आगे कहा--आपका मेरे ऊपर क्या उपकार है? उलटा मेरे जिगर को चीर डाला और तन में अग्नि लगा

दोपुस तमि तोरुह क्याह वोपुकार कोरुथम ।
जिगर चोटथम शिकम क्यथु नारु बोरुथम ॥ ५ ॥

अंछिन हुन्द गाश ओसुम रामु अवतार ।
कंडिथ छुनथम तु क्याह द्युतथम ज़िदय नार ॥
दोपुन तस कुन दोदुस मतु ज़ालतम वोन्य ।
दज़न छुस यिम पज़न तिम पालतम वोन्य ॥
परुनि लोग रामु रामु सुबह ता शाम ।
दज़न रातस प्रबातस ह्योतुन आराम ॥
परुनि लोग रामु रामु लीन सोपुन ।
सु अन्तर मोख्त गव आईनु सोपुन ॥
करन युस राज़ु लूकन प्यठ हुकूमथ ।
परन शिवु शिवु वदन न्यंत्रव होरुन रथ ॥ १० ॥

वलुनु ज़न ओस आमुत क्रीडु ज़ालस ।
करुनि लोग चाक दामानस तु नालस ॥
सपुन बेहोश तख्त व ताज त्रोवुन ।
वुछिथ गव पोप्यन न्यदरश होवुन ॥
पंजिरु मंज़ुबाग येलि लोत लोत न्यबर द्राव ।
वुछनि लोग कस छु ज़ामुत कुस तमिस ज़ाव ॥

दी । ५ रामावतार मेरी आँखों के प्रकाश थे । उन्हें निर्दयतापूर्वक निकालकर आप ने मुझे जीते-जी अग्नि में धकेल दिया । तब राजा ने कौशल्या से कहा—मैं काफ़ी जला हूँ, अब मुझे और न जला । मैं भीतर से धधक रहा हूँ, तेरे मन में अब जो भी आये उसे कह डाल । (इस प्रकार) राजा सुबह-शाम राम-राम पढ़ने लगे और एकान्त में रात-दिन भीतर-ही-भीतर जलने लगे । राम-राम पढ़ने में वे लीन हो गये और इस प्रकार अन्तर्मुक्त हो उनका मन आईने की तरह (निर्मल) हो गया । जो राजा (कभी) लोगों पर हूकूमत किया करता था वही (आज) शिव-शिव (राम-राम) पढ़ता हुआ नेत्रों से रक्ताश्रु बहा रहा था । १० ऐसा लग रहा था जैसे मोह-माया से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे हों । वे अपने दामन व गले को चाक कर रहे थे । वे बेहोश हो गये तथा तख्त व ताज को त्याग दिया । कायारूपी पिंजरे से जब वे धीरे-धीरे बाहर निकलने लगे तो उन्हें भान होने लगा कि (वास्तव में) उनको किसने जन्म दिया है और उन्होंने किसको जन्म दिया है । सारे व्यवधान काटकर

च़ंटिन जबु जामु मोंकुलोविन अथु खोर ।
वंटिन नवदार छारुनि लोंग च़ोंदाह पोर ॥
वुछुन नु काँह गोंबुर न कांसि हुन्द मोल ।
अंकिस अख दुपु सुतिन दुफ ज़न ज़ोल ॥ १५ ॥
वोंदुन वाराह तु समसारा रिवान ओस ।
दपन कीकियि प्यठ नाख़ोंश स्यठाह ओस ॥
सोंनस येंलि नारुह सुतिन ज़ोलनस ज़व ।
सो कीकी आयि मन तस साविदान गव ॥
शतुरगुन बरथ मातामाल गांमुत्य ।
गंयख शेंछ तिम ति आसन यूर्य आमुत्य ॥
शतुरगुन बरथ मालिनि मंगु नांविन ।
तिम आयस ताम तिमन अहवाल बांविन ॥
वनुनि लोंग बरुथ जामन कंरिन पारा ।
मंरिथ कति मोल मेल्यम बेंयि दोबारा ॥ २० ॥
मंछुन म्यंच़ सांरिसुय फ़ंरियाद लांयिन ।
यितम दर्शुन दितम तस नाद लांयिन ॥
पलन छोवुन कलु छोविन कलस पल ।
लबन कति सिरियि गोमुत अनिगंटिस तल ॥

उन्होंने अपने हाथ-पैर मुक्त कर डाले तथा नौ-द्वार बन्दकर वे चतुर्दश मंज़िल को ढूँढ़ने लग गये। वहाँ (पहुँचकर वे पिता-पुत्र के सम्बन्धों से बहुत ऊपर उठ गये) न पुत्र को ही देखा और न अपने को पिता-रूप में ही पाया। बस, ऐसा लगा जैसे एक दीप ने दूसरे दीप को जलाया हो। १५ वे ख़ूब रो रहे थे। संसार भी (उनके साथ-साथ) रो रहा था। कहते हैं कैकेयी पर वे बहुत नाख़ुश थे। राजा की सोने जैसी दमकती देह को जब उसने अग्नि से दहकते देखा तो उसका मन सावधान हो गया। शत्रुघ्न व भरत ननिहाल गए हुए थे। उन्हें सन्देश भिजवाया गया और वे वहाँ से आने को हुए। (कैकेयी ने) शत्रुघ्न और भरत को अपने मायके से बुलवाया। जैसे वे आये तो उसने उनसे सारा अहवाल (हाल) कहा। भरत वस्त्रों को फाड़कर कहने लगे—भला मरने के उपरान्त अब पिताजी मुझे दुबारा कहाँ मिलेंगे? २० उन्होंने (भरत ने) अपने सारे शरीर को मिट्टी में मिला दिया तथा रोते-रोते ज़ोर से फ़रियाद करने लगे—(हे तात!) आकर मुझे दर्शन दीजिए।

अमूल्य हैं। प्रभू का धर्म और न्याय अमूल्य है, उसकी तौल और कसौटी भी अमूल्य है। उसकी कृपा और कृपादृष्टि प्राप्त करनेवाले भी अमूल्य हैं। ऐसे अमूल्य गुणों के सागर, ईश्वर के बारे में क्या कहें; तथापि प्रभू-सुयश का गान करके सज्जन पुरुष अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। वेदों-पुराणों के पठन-पाठन और व्याख्यान-कर्त्ताओं का भी यही कथन है; ब्रह्मा-इन्द्र और अनेक देवी-देवता भी यही बखानते हैं; गोपियाँ और कृष्ण भी यही स्तुति करते हैं; सिद्ध और शिवजी भी यही कहते हैं; उसकी कृपा के बल पर बुद्धिवान् व्यक्ति भी यही कहते हैं; राक्षस, देव, दानव भी यही कहते हैं; देवपुरुष, मुनिजन और गुरु-सेवक भी यही कहते हैं। कई कह रहे हैं और कहने का यत्न कर रहे हैं; कई कह-कहकर उठ-उठकर (इस लोक से) जा भी चुके हैं। (सबका कथन यही है कि) प्रभू ने सब कुछ किया है और करेगा। परन्तु फिर भी उसके बारे में पूर्णरूपेण कोई नहीं कह सका। वह स्वयं जितना है उतना वर्णन प्रभू स्वयं ही कर सकता है। यदि कोई मूर्ख व्यक्ति बड़बोला उसका वर्णन करने का साहस करता भी है तो उसको मूर्ख-शिरोमणि ही कहना चाहिए।

आसा महला १

सुणि वडा आखै सभु कोय। केवडु वडा डीठा होय। कीमति पाइ न कहिआ जाय। कहणै वाले तेरे रहे समाय ॥१॥ वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा। कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभि सुरती मिलि सुरति कमाई। सभ कीमति मिलि कीमति पाई। गिआनी धिआनी गुर गुरहाई। कहणु न जाई तेरी तिलु वडि आई ॥ २ ॥ सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ। सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ। तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ। करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥ ३ ॥ आखण वाला किया वेचारा। सिफती भरे तेरे भंडारा। जिसु तू देहि तिसै किया चारा। नानक सचु सवारणहारा ॥ ४ ॥ २ ॥

[आगे की पंक्तियों में श्रीगुरु नानक देवजी अपने पिता मेहता कालू जी एवं माता तृप्ता जी से जीवन के यथार्थ के बारे में वार्तालाप करते हुए कह रहे हैं।]

आसा महला १—प्रत्येक मनुष्य अर्थात् प्राणीमात्र जो एक दूसरे से उस प्रभू के बारे में सुनते हैं, उसे बड़े से बड़ा कहकर बखानते हैं; परन्तु यथार्थ में वह कितना विशाल है उसका सही वर्णन तो वही कर सकता है जिसने स्वयं उसके दर्शन किए हों। इसलिए हे ईश्वर ! न तो तेरी

कोई कीमत चुकाई जा सकती है और न ही तेरा अन्त जाना जा सकता है—अर्थात् तू अनन्त है। तेरा गुणगान करनेवाले तो तुझी में समा जाते हैं, अर्थात् तेरे साथ एकाकार हो जाते हैं। हे मेरे स्वामी प्रभू सर्वगुण सम्पन्न अनन्तरूप ! कोई भी तेरा पूर्णरूपेण वर्णन नहीं कर सकता। सभी गुणवान् विद्या-विचारवान् अपनी-अपनी बुद्धि से तेरा यश-गान करते हुए तेरी सराहना कर रहे हैं, परन्तु वह तो तिल मात्र भी तेरी सम्पूर्णता का बोध नहीं कर पाते। सभी सच्चे, तपस्वी अच्छे सिद्धपुरुष तेरे द्वारा प्रदत्त यश को प्राप्त करते हैं और जिस पर तू अपनी कृपादृष्टि करना चाहता है उसे यशस्वी बनने से कोई रोक नहीं सकता। अर्थात् प्रत्येक मनुष्य तेरी ही कृपा के सहारे है। बेचारा प्राणी तेरा क्या बखान कर सकता है। तेरे भंडार तो सदैव गुणों से भरपूर हैं। जिस पर तेरी कृपादृष्टि हो जाए उसे किस चीज़ की कमी है—गुरु नानकदेवजी कहते हैं कि हे सत्यस्वरूप परमात्मा ! तू ही स्वयं सबका कर्त्ता है—सवाँरने-बिगाड़ने और बनानेवाला है।

आसा महला १

आखा जीवा विसरै मरि जाउ। आखणि अउखा साचा नाउ। साचे नाम की लागै भूख। उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥ १ ॥ सो क्यो विसरै मेरी माय। साचा साहिबु साचै नाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साचे नाम की तिलु वडिआई। आखि थके कीमति नही पाई। जे सभि मिलिकै आखण पाहि। वडा न होवै घाटि न जाय ॥ २ ॥ ना ओहु मरै न होवै सोगु। देदा रहै न चूकै भोगु। गुणु एहो होरु नाही कोय। ना को होआ ना को होय ॥ ३ ॥ जेवडु आपि तेवड तेरी दाति। जिनि दिनु करि कै कीती राति। खसमु विसारहि ते कमजाति। नानक नावै बाझु सनाति ॥ ४ ॥ ३ ॥

आसा महला १—गुरु जी कहते हैं कि जब तक मैं उस ईश्वर का नाम जपता रहता हूँ तभी तक जीवित रहता हूँ, और जिस समय उसका नाम नहीं लेता, मृतकरूप हो जाता हूँ, मानो जीवन नाम की वस्तु पास नहीं रह जाती। सत्य तो यह है कि उस प्रभू का सिमरन (नाम जपना) बहुत कठिन है। जिस प्राणी पर कृपा हो गई और जिसे उस प्रभू के सच्चे नाम को जपने की भूख लग गई, वह सभी दुःखों-क्लेशों से दूर सदैवी (शाश्वत) सुख को प्राप्त करता है। हे माँ ! सत्यं शिवं सुन्दरम्-स्वरूप उस ईश्वर को मैं कैसे भूल जाऊँ, जो सदैव सत्यस्वरूप है और जिसकी सारी रचना

सत्य है। उस प्रभू के सच्चे नाम की तिल-मात्र भी बड़ाई को बड़े-बड़े योगी-ऋषि-महिष बखान नहीं सके। यदि सारे जीव एक साथ होकर सामूहिक रूप से भी उसका गुणगान करने लग जावें, अथवा उसकी निन्दा करने लगें तो, न तो वह बड़ा हो जाता है, न छोटा। अर्थात् यश-अपयश से वह परे है। वह परमात्मा न तो मरता है (अर्थात् जीवन-मरण से परे है), न शोकातुर होता है। सबको जीविका प्रदान करता है, और किसी को कभी भी भूलता नहीं। ऐसे गुणों से युक्त और कोई, न तो कभी हुआ है, न है, और न होगा ; अर्थात् ईश्वर जैसा ईश्वर स्वयं ही है। जितना विशाल वह स्वयं है—उतनी ही विशाल उसकी कृतियाँ हैं। उसने ही रात और दिन बनाए हैं—ऐसे प्रभू को भूलनेवाला व्यक्ति निकृष्ट—नीच कहलाता है और भूत-प्रेत आदि योनियों में भटकता रहता है।

रागु गूजरी महला ४

हरि के जन सतिगुर सतपुरखा बिनउ करउ गुर पासि। हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइया नामु परगासि ॥ १ ॥ मेरे मीत गुरदेव मोकउ राम नामु परगासि। गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस। हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥ २ ॥ जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि। जो सतिगुर सरणि संगति नही आए धृगु जीवे धृगु जीवासि। जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि। धनु धंनु संतसंगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥ ४ ॥ ४ ॥

राग गूजरी महला ४—(सिख सम्प्रदाय के तीसरे गुरू श्री गुरु अमर-दास जी अपनी पुत्री बीबी भानी के विवाहोपरांत-चौथे गुरु श्री गुरु रामदास जी से कह रहे हैं कि आप हमारे दामाद हैं—माँगिए क्या माँगते हैं। तब गुरु रामदास जी कहने लगे,) हे पूज्य गुरूदेव सतगुरू ! मेरी आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि हम छोटे निम्नकोटि के लोग आपकी चरण-शरण में आए हैं। यदि आप की कृपादृष्टि हो जावे तो हमारे हृदय में भी प्रभू का वास हो जावे—हमारी यही प्रार्थना है कि प्राणरक्षक ईश्वर का नाम, उसकी कीर्ति का, कृपा का पात्र बनवा दें। हरि के नाम के इच्छुक और जपनेवाले ऊँचे भाग्यशाली हैं, बड़े हैं, और हरि-सिमरन से तृप्त हो जाते हैं; साधु-संगत से प्रकाश प्राप्त करते हैं। और जिन्होंने

हरिनाम का रसास्वादन नहीं किया है वे भाग्यहीन व्यक्ति यम के द्वार को प्राप्त करते हैं। उनका संसार में आना जीवन-यापन करना धिक्कार है। परन्तु जिन्होंने सत्गुरू की संगत प्राप्त की है, ईश्वर के नाम की अराधना की है, वे धन्य हैं; और वह समूह, साधु-संगत धन्य है जो प्रभू की अराधना में लीन है। अतः हे गुरूदेव आप कृपा करके मुझे नाम का दान ही प्रदान करें।

रागु गूजरी महला ५

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ। सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥ १ ॥ मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सु तरिया। गुर परसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किस की धरिआ। सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥ २ ॥ ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ। तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥ ३ ॥ सभि निधान दसअसट सिधान ठाकुर करतल धरिया। जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥ ४ ॥ ५ ॥

राग गूजरी महला ५—पाँचवें गुरू श्री गुरु अर्जुनदेव जी अपने मन के बहाने भाई गुरदास जी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे मन ! तू क्यों अनेकानेक यत्नों पर मोहित होता रहता है, जबकि वह परमात्मा स्वयं सबकी देख-भाल करता है, यहाँ तक कि पहाड़ों-पत्थरों में उत्पन्न होनेवाले जीवों की रक्षा और उनकी जीविका के साधन उपलब्ध कराता है। हे मन ! सत्संगत से ही बेड़ा पार लगाया जा सकता है। गुरू की कृपा से सूखे वृक्ष हरे हो जाते हैं। रीते हृदय नाम से भर जाते हैं; माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि सभी संबंध व्यर्थ हैं; कोई किसी का साथी नहीं है। सभी जीवों की जीविका देनेवाला वह प्रभू स्वयं सबकी चिन्ता करता है। अतः हे मन ! तू क्यों परेशान भटकता रहता है। पंछी मीलों तक उड़-उड़ कर चले आते हैं; पीछे उनके बच्चों की देखभाल कौन करता है, उनका भोजन कौन पहुँचाता है। केवल प्रभू को हृदय में याद रखने से ही उनके बच्चों की पालना होती रहती है। सभी सिद्धियाँ उस प्रभू की हथेली पर हैं और ऐसे प्रभू पर बार-बार बलिहार होना चाहिए जो आदि और अनन्तस्वरूप सर्वप्रति-पालक है।

रागु आसा महला ४ सो पुरखु

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि । सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा । सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा । सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा । हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारणहारा । हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किआ नानक जंत विचारा ॥ १ ॥ तू घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा । इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा । तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा । तूं पारब्रह्म बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि वखाणा । जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥ २ ॥ हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुग महि सुख वासी । से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी । जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी । जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी । से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलि जासी ॥ ३ ॥ तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बिअंत बेअंता । तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता । तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता । तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता । से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवंता ॥ ४ ॥ तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी तुधु जेवडु अवरु न कोई । तूं जुगुजुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई । तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सुहोई । तुधु आपे त्रिसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई । जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ॥ ५ ॥ १ ॥

राग आसा महला ४—वह परमात्मा आदिकाल से अनन्त है और अनन्तकाल तक सत्य-स्वरूप ही रहेगा । हे सत्य-स्वरूप सृजनहार ! तुझे आदिकाल से लोग पूज रहे हैं, अनन्तकाल तक पूजते रहेंगे । सभी जीव-

प्राणीमात्र तुझी द्वारा उत्पन्न किए हुए हैं और तू ही उनका अन्नदाता—मुक्ति और मोक्ष का दाता है। हे संतजनो ! उस दुःख-निवारण हरी को याद करो। गुरुदेव कहते हैं कि मैं नाचीज़ उसके बारे में क्या कह सकता हूँ जो स्वयं स्वामी है और स्वयं ही भक्तों का सेवक भी है। हे ईश्वर ! तू सभी सेवक—जीवों के अन्दर एकरूपी समाया हुआ है, अर्थात् उनमें व्याप्त है। इस संसार में तेरे बनाए हुए दाता भी हैं और भिखारी भी, जो चित्रपट पर अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं। तू स्वयं ही सर्वगुणसम्पन्न है। मैं तेरे गुणों का किस तरह वर्णन करूँ ? अर्थात् मैं नाचीज़ तेरा वर्णन करने में असमर्थ हूँ। गुरुदेव कहते हैं कि जो तेरे सेवक तेरी भक्ति में लीन हैं, मैं उनपर क़ुर्बान जाता हूँ। हे प्रभू ! जो तुझे सदैव याद करते हैं, अर्थात् तेरा सिमरन-भजन करते हैं, वे सदैव सुखी रहते हैं। आवागमन के चक्करों में नहीं भटकते और मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं। हे निर्भय प्रभू ! जो तेरी अराधना भयवश मुक्ति प्राप्त करने के लिए करते हैं, उनका भय तू स्वयं दूर कर देता है। जिन्होंने तेरा सिमरन भजन किया है उनके लिए तू दुःख-क्लेशों का नाश करनेवाला दुःख-निवारक है। तेरी भक्ति के भंडार सदैव भरे हुए हैं। तेरे भक्त तुझे आदिकाल से सराह रहे हैं और अनन्तकाल तक सराहते रहेंगे। तेरी पूजा और अराधना की अनेक रीतियाँ हैं। अनेक ही तरह से तेरी उपासना होती रहती है। तेरे भक्त तुझसे मिलने के लिए तप और जाप करते हैं। तेरा यशगान करनेवाली अनेकानेक स्मृतियाँ और शास्त्र हैं ; उनका पाठ विद्वान् पुरुष करते हैं, और योग-साधनावाले योगी भी तेरा यशगायन कर रहे हैं। गुरुदेव कहते हैं कि हे प्रभू ! जो तेरे भक्त तुझे अच्छे लगते हैं वे तीनों ही समयों में शोभायमान होते हैं।

हे आदिपुरुष, कर्त्ता सृजनहार तेरी महिमा अपरंपार है और तुझ सा कोई दूसरा नहीं है जिससे तेरी तुलना की जा सके। तू युगों-युगों से सदैव स्थिर रहनेवाला सत्यस्वरूप परमात्मा है। जो तू चाहता है वही इस संसार के रंगमंच पर होता है। तू स्वयं सृष्टि का सृजनकर्त्ता है और जब चाहता है इसका संहार करके अपने में मिला लेता है। गुरुदेव कहते हैं, मैं तेरा क्या बखान करूँ ? तू तो स्वयं ही अन्तर्यामी और सृजनहार है।

आसा महला ४

तूं करता सचिआरु मैडा सांई। जो तउ भावै सोई थीसी जो तू देहि सोई हउ पाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ। जिस नो क्रिपा करहि तिनि नाम रतनु पाइआ।

गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ। तुधु आपि विछोड़िया आपि मिलाइआ ॥ १ ॥ तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि। तुझ बिनु दूजा कोई नाहि। जीअ जंत सभि तेरा खेलु। विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥ २ ॥ जिस नो तूं जाणाइहि सोई जनु जाणै। हरिगुण सद ही आखि वखाणै। जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ। सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥ ३ ॥ तूं आपे करता तेरा कीआ सभु होय। तुधु बिनु दूजा अवरु न कोय। तू करि करि वेखहि जाणहि सोय। जन नानक गुरमुखि परगटु होय ॥ ४ ॥ २ ॥

आसा महला ४ हे कर्त्ता पुरुष ! तू ही मेरा सच्चा स्वामी है। जो तुझे भाता है वही होता है। जो तू देता है वही हम प्राप्त करते हैं। सारी सृष्टि तेरी ही कृति है और सभी प्राणी तेरी प्रशंसा करते हैं। जिस पर तेरी कृपादृष्टि हो जाती है वही तेरा नाम-रूपी रत्न प्राप्त करता है, और दूसरे लोग पाकर भी खो देते हैं। अपने भक्तों को तू अपने में मिला लेता है और दूसरों को अपने से दूर कर देता है। तू विशाल समुद्र है, अथाह जल-राशि का स्वामी है, और सबकुछ तुझी में समाया हुआ है। सब कुछ तेरा ही किया हुआ है और संयोग एवं वियोग तेरी आज्ञा के अन्दर अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। जिन्हें तू चाहता है उन्हें मिलने की राह बता देता है, और वह अहर्निश तेरा गुण-गान करते रहते हैं। जिन्होंने तेरा यशगान किया है, वे आत्मपद को प्राप्त कर चुके हैं--और तुझमें समा गए हैं। सब कुछ तेरा ही किया हुआ है। तुझसे अलग और कुछ नहीं है। तू स्वयं ही अपनी सृष्टि का तमाशा देखता है और गुरुदेव कहते हैं कि भक्तों के समक्ष तू स्वयं प्रगट हो जाता है।

आसा महला १

तितु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ। पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥ १ ॥ मन एकु न चेतसि मूड़ मना। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ। प्रणवति नानक तिन की सरणा जिन तूं नाही वीसरिआ ॥ २ ॥ ३ ॥

आसा महला १—हे मन ! देख इस संसार-रूपी समुद्र में जल,

वायु, अग्नि-आदिक अनेक वस्तुएँ तेरे सुख-दुख के लिए उपस्थित हैं। ईश्वर ने शब्द, भाव, स्पर्श, रूप-स्वरूप, रस-गंध आदि जल-रूप और तृष्णा अग्नि रूप बनाई है। मोह-रूपी कीचड़ में बुद्धि-रूपी पैर फँस कर परमेश्वर की राह से भटक जाता है, और दल-दल में, मोहमाया के जाल में फँसकर रह जाता है—हे मूर्ख मन ! तू एकचित्त होकर प्रभु-भक्ति क्यों नहीं करता, कि तेरे गुण तेरे साथ रहें। हे प्रभू ! मैं न तो जती-सती हूँ और न विद्वान् ! मुझ-जैसे अज्ञानी मूर्ख का सारा जन्म ही निष्फल बीत गया है। गुरुदेव कहते हैं, मैं तो उन प्रभु-भक्तों की शरण चाहता हूँ जिन्हें तू सदैव याद रहता है अर्थात् जो सदैव तेरी उपासना में लीन रहते हैं।

आसा महला ५

भई परापति मानुख देहुरीआ। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ। अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥ १ ॥ सरंजामि लागु भवजल तरन कै। जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जपु तपु संजमु धरमु न कमाइया। सेवा साध न जानिआ हरि राइआ। कहु नानक हम नीच करंमा। सरणि परे की राखहु सरमा ॥ २ ॥ ४ ॥

आसा महला ५—हे प्राणीमात्र ! यह मानवी शरीर, जो तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह केवल प्रभु-भक्ति के लिए है। ईश्वर से मिलने के लिए है। तुझे तो केवल सत्संग करना है, और व्यर्थ के कामों से तुझे कोई मतलब नहीं है। संसार-सागर से बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ। तेरा यह जन्म मायाजाल में फँस कर व्यर्थ बीता जा रहा है। हे प्रभू ! मैंने जप-तप, पूजा-पाठ, संयम-नियम, धर्म कुछ भी नहीं किया। संतसेवा भी मैंने नहीं की। गुरुदेव कहते हैं, हम नीचकर्म-प्रवृत्ति के लोग तेरी शरण में आए हैं—हमारी लज्जा अब तेरे ही हाथ है। शरणागत की रक्षा आप ही को करनी है, अर्थात् भवसागर से पार उतारना है।

सोहिला रागु गउड़ी दीपकी महला १

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि। जै घरि कीरति आखीऐ करते का होय बीचारो। तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥ १ ॥ तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला।

कुटुम्बसहितं हत्वा रामो युद्धे दशाननम् । ततः ससीतः स्वपुरे चकार चरणस्थितिम् ॥
रामो राजा राजधानी चायोध्या परिकीर्तिता । सुवाण्या देवमुनयो गायन्त्यस्य गुणान् सदा ॥
किन्तु भक्ताः प्रेमयुक्तं नामस्मरणमात्रतः । विना प्रयासं मोहस्य जित्वा प्रबलवाहिनीम् ॥
प्रेम्णि मग्ना निजानन्दे विचरन्ति स्ववाञ्छया । नाम्नः प्रसादात् तान् कापि चिन्ता न त्रासयत्यदः ॥

वरप्रदेभ्योऽपि वरप्रदातृ पराद् वरं नाम तथा च रामात् ।
ज्ञात्वेति चित्ते शतकोटिराम - चरित्रतः शम्भुरदोऽगृहीत् सत् ॥ २५ ॥

मासपारायणे प्रथमो विश्रामः सम्पूर्णः

नाम्न एव प्रसादेन विनाशरहितः शिवः । अमङ्गलोऽपि वेशेन सर्वमङ्गलसूत्करः ॥
सनकाद्याः शुकाद्याश्च नानासिद्धर्षि-योगिनः । नाम्न एव प्रसादेन ब्रह्मानन्दानुभूतिनः ॥
प्रतापं ज्ञातवान् नाम्नः सकलं नारदो मुनिः । प्रियो हरिस्तु जगतस्तस्य शम्भुस्तयोश्च सः ॥
नाम्नो जपाद् वरकृपां प्रह्लादे कृतवान् हरिः । एतस्मात् कारणाज्जातः स च भक्तशिरोमणिः ॥
ग्लानियुक्तो हरेर्नाम्नः कृतवान् सुजपं ध्रुवः । तेनाचलाद्वितीयं स हरिधामोपलब्धवान् ॥
अतीव पावनं नाम जप्त्वा पवननन्दनः । स्ववशं कृतवानस्ति श्रीरामं नामसेवनात् ॥
गणिकाजामिलो हस्ती सर्वेऽप्येतेऽधमाः पुरा । हरिनाम्नः प्रभावेण सञ्जाता मुक्तिभागिनः ॥
कियत्प्रमाणं नाम्नोऽहं माहात्म्यं वर्णये जनाः । गुणानां वर्णने नाम्नः शक्तो रामोऽपि न स्वयम् ॥

तिष्ये विशेषात् खलु रामनाम श्रेयोनिवासः सुरपादपश्च ।
दासस्तुलस्या विजयेव यस्य स्मृतेः प्रभावात् तुलसीव जातः ॥ २६ ॥

युगेषु किञ्च सर्वेषु काललोकत्रिके तथा । रामनाम्नो जपाज्जीवा जाताः सन्ति विशोकिनः ॥
एतदेव श्रुतीनाञ्च पुराणानां सतां मतम् । सर्वेषां पुण्यकार्याणां रामे स्नेहो महत् फलम् ॥
सत्याख्ये प्रथमे ध्यानात् त्रेतायां यजनात् तथा । परितुष्टो भवेदीशः पूजनाद् द्वापरे युगे ॥
किन्तु मूलं किल्विषस्य मलिनञ्च युगं कलिः । अस्मिन् जनमनो मीनरूपं पापपयोनिधौ ॥
कलिकाले करालेऽस्मिन् नामोक्तं कल्पपादपः । स्मृतमात्रं जगज्जालं सर्वं शमयति क्षणात् ॥
रामेति तदिदं नाम कलौ वाञ्छितसिद्धिदम् । परलोके हितं लोके मातृपितृस्वरूपधृक् ॥
कलौ न भक्तिर्नो कर्म विवेकोऽपि च नाश्रयः । केवलं रामनामैव संस्मृतं परमाश्रयम् ॥
निशाचरः कालनेमिः कलिः कपटशेवधिः । सुशक्तं तस्य हनने रामनाम च मारुतिः ॥

नामास्ति रामस्य नृसिंहदेवो हिरण्ययुक्तः कशिपुः कलिश्च ।
प्रह्लादतुल्या जपिनश्च तस्य हत्वा सुरारिं परिपाति तत् तान् ॥ २७ ॥

भावेन वा कुभावेन क्रुधाऽऽलस्येन वा पुनः । कथञ्चिदपि सन्नाम्नो दशदिक्षु शुभं जपात् ॥
स्मृत्वा तद् रामनामाहं प्रणम्य च रघूत्तमम् । रघूत्तमस्य सकलान् वर्णयाम्युत्तमान् गुणान् ॥
कुदशां मे स सुदशां सर्वतः साधयिष्यति । कदापि तृप्ति नायाति कुर्वती यत्कृपा कृपाम् ॥
सुस्वामी रामसदृशः कुदासश्चैव मादृशः । दयानिधिस्तथापि स्वं वीक्ष्य पालयति स्म माम् ॥
सुस्वामिनो रीतिरेषा प्रसिद्धा लोक-वेदयोः । विनयस्य श्रुतावेव प्रीतिं परिचिनोति सः ॥
धनिको निर्धनो वापि ग्रामीणो नागरोऽपि वा । विद्वानविद्वान् सत्कीर्ति-निन्दनीयोऽथवा मतः ॥
सुकविः कुकवि-र्वापि सर्वदैव यथामति । सर्वे नरास्तथा नार्यः स्तुवन्ति निजभूपतिम् ॥

साधु - सुजान - सुसील नृपाला । ईस - अंस भव परमकृपाला ॥
सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी । भनिति भगति-नति-गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल - सुभाऊ । जान सिरोमनि कोसलराऊ ॥
रीझत राम - सनेह निसोतें । को जग मंद - मलिनमति मोतें ॥

दो०—सठ सेवक की प्रीति - रुचि, रखिहहिं राम कृपालु ।
उपल किए जलजान जेहिं, सचिव सुमति कपि-भालु ॥ २८(क)॥

हौंहु कहावत, सबु कहत, राम सहत उपहास ।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥ २८(ख)॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ॥
सुनि, अवलोकि, सुचित चख चाही । भगति मोरि मति, स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ, होइ हियँ नीकी । रीझत राम जानि जन-जी की ॥
रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥

दो०—प्रभु तरु तर, कपि डार पर, ते किए आपु समान ।
'तुलसी' कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान ॥ २९(क)॥

राम निकाईं रावरी, है सबही को नीक ।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥ २९(ख)॥

एहि बिधि निज गुन-दोष कहि, सबहि बहुरि सिरु नाइ ।
बरनउँ रघुबर-बिसद-जसु, सुनि कलि-कलुष नसाइ ॥ २९(ग)॥

जागबलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी ॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । रामभगत, अधिकारी चीन्हा ॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते श्रोता - बकता समसीला । सवँदरसी जानहिं हरिलीला ॥
जानहिं तीनिकाल निज ग्याना । करतल - गत आमलक समाना ॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना । कहहिं, सुनहिं, समुझहिं बिधि नाना ॥

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३०(क)॥

श्रोता - बकता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलिमल-ग्रसित, बिमूढ़ ॥ ३०(ख)॥

तदपि कही गुर बारहिंबारा । समुझि परी कछु मति - अनुसारा ॥

साधवः सुधियः शीलयुक्ताः पृथ्वीश्वरा अपि । ईशांशभूता उत्कृष्टकृपया संयुतास्तथा ॥
सर्वेषामेव कुर्वन्ति मृदुवाण्या समादरम् । वाचं भक्तिं गतिं तेषां नम्रताञ्चाधिगम्यते ॥
स्वभावोऽयं लौकिकानां नृपाणां वर्तते सदा । समस्तु कोशलाधीशश्चतुराणां शिरोमणिः ॥
स्नेहमात्रेण शुद्धेन जने स प्रीयते क्षणात् । किन्तु को मादृशो लोके मन्दो मलिनधीर्भवेत् ॥

रामः कृपालुः शठसेवकस्य प्रीतिं रुचिं मे परिपात्यवश्यम् ।
यः प्रस्तरान् सेतुमथ प्लवङ्गान् ऋक्षांश्च चक्रे सचिवान् सुबुद्धीन् ॥ २८ ॥ क

मां रामदासं कथयन्ति सर्वे रामस्य दासोऽहमपि प्रकथ्ये ।
उपात्तहासं सहते च रामो दासेश्वरौ मादृशमेशतुल्यौ ॥ २८ ॥ ख

इदं मम महाकारं धृष्टत्वं दूषणं तथा । श्रुत्वाघं मेऽस्ति विमुखो नरकोऽपि न संशयः ॥
इति विज्ञाय भीतोऽस्मि भयात् स्वेनैव कल्पितात् । किन्तु सर्वमिदं रामः स्वप्नेऽपि ध्यातवान् न मे ॥
श्रुत्वा दृष्ट्वा परीक्ष्यापि तदिदं चित्तचक्षुषा । प्राशसतैव मे स्वामी भक्तिं मम मतिं तथा ॥
उक्तौ नाशो यद्यपि स्याच्चित्ते स्याच्छुचिता परम् । जनस्य चित्ते शुचितां ज्ञात्वा रामः प्रसीदति ॥
प्रभोश्चित्ते न तिष्ठन्ति प्रमादाः सेवकैः कृताः । तेषां चित्तगुणानेव प्रभुस्तु स्मरते शतम् ॥
वालिनं येन पापेन जघ्ने व्याध इव प्रभुः । तदेव कुत्सितं पापं सुग्रीवोऽप्यकरोत् पुनः ॥
विभीषणस्यापि कर्म तदेवासीत् ततः पुनः । किन्तु स्वप्नेऽपि रामस्तच्चित्ते चिन्तयति स्म न ॥
तौ समादृतवान् किञ्च भरतेन समागमे । प्राशंसदपि तौ राजसभायां रघुपुङ्गवः ॥

तरोस्तले स्वं कपयस्तथोर्ध्वं रामस्तु तानप्यकरोत् स्वतुल्यान् ।
कोऽन्योऽस्ति लोके तुलसीमतेन रामोपमः शीलनिधिर्जनेशः ॥ २९ ॥ क

श्रीराम नूनं भवतो हितेन स्यादेव सर्वस्य हितं जनस्य ।
यद्यस्ति सत्यं त्विदमत्र नित्यं ध्रुवं हितं स्यात् तुलसीयुतस्य ॥ २९ ॥ ख

निजान् गुणांश्चेति निरूप्य दोषांस्तथैव सर्वान् प्रणिपत्य भूयः ।
यशः प्रगायामि रघूत्तमस्य शुद्धं श्रुतं सत् कलिकल्मषघ्नम् ॥ २९ ॥ ग

सुधन्योयाज्ञवल्क्योयां कथां मञ्जुलमङ्गलाम् । भरद्वाजर्षिवर्याय श्रावयामास रामगाम् ॥
संवादगां वर्णयिष्ये कथां तामेव विस्तरात् । शृण्वन्तु सुजनाः सर्वे मन्यन्तो मानसे सुखम् ॥
इदं विरचयामास चरितं प्रथमं शिवः । ततश्च श्रावयामास कृपया जगदम्बिकाम् ॥
तदेव चरितं शम्भुर्दद्यौ काकभुशुण्डिने । तं रामभक्तं तस्याधिकारिणञ्च विवेद सः ॥
ततो लेभे याज्ञवल्क्यस्तत्तु काकभुशुण्डिनः । भरद्वाजाय मुनये सोऽपि श्रावयति स्म तत् ॥
तावुभौ श्रोतृवक्तारौ समशीलौ समेक्षणौ । जानीतश्च हरेर्लीलां सकलां सर्वभावतः ॥
निजज्ञानप्रभावेण तौ कालत्रितयं पुनः । करामलकवत् साक्षात् सर्वदैवावगच्छतः ॥
अन्येऽपि ये रहस्यज्ञा हरिभक्ता इदं तु ते । वृत्तं गायन्ति बहुधा शृण्वन्ति च विदन्ति च ॥

क्षेत्रे ततः सूकरसंज्ञकेऽहं निजाद् गुरोस्तु श्रुतवान् कथां ताम् ।
बाल्यादजानं न पुनस्तथा तामबोध आसं यदतीव नूनम् ॥ ३० ॥ क

कथातिगूढा रघुनन्दनस्य श्रोता च वक्ता च निधी चितोऽस्याः ।
मूढो निबद्धः कलिकिल्बिषेण जाने स्म जीवः किमु मन्दधीस्ताम् ॥ ३० ॥ ख

तथापि सद्गुरुर्मां तां भूयोऽप्यश्रावयत् कथाम् । ततो यथामति च सा मम चित्तं समागता ॥

भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥
जस कछु बुधि - बिबेक - बल मेरें । तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें ॥
निज संदेह - मोह - भ्रम - हरनी । करउँ कथा भव-सरिता-तरनी ॥
बुध - बिश्राम, सकलजन - रंजनि । रामकथा कलिकलुष - बिभंजनि ॥
रामकथा कलि - पंनग - भरनी । पुनि बिबेक - पावक कहुँ अरनी ॥
रामकथा कलि कामद गाई । सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधा - तरंगिनि । भय-भंजनि, भ्रम-भेक-भुअंगिनि ॥
असुरसेन - सम नरक - निकंदिनि । साधु-बिबुध-कुल-हित गिरिनंदिनि ॥
संतसमाज - पयोधि रमा - सी । बिस्वभार-भर अचल छमा-सी ॥
जमगन-मुहँ मसि जग जमुना-सी । जीवन-मुकुति-हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी-सी । तुलसिदास हित हियँ हुलसी-सी ॥
सिवप्रिय मेकलसैलसुता सी । सकल - सिद्धि - सुख - संपति - रासी ॥
सदगुन सुरगन, अंब अदिति-सी । रघुबर-भगतिप्रेम परमिति-सी ॥

दो०—रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु ॥ ३१ ॥

रामचरित चिंतामनि चारू । संत-सुमति तिय-सुभग-सिँगारू ॥
जगमंगल गुन - ग्राम राम के । दानि मुकुति, धन, धरम, धाम के ॥
सदगुर ग्यान, बिराग, जोग के । बिबुध बैद भव-भीमरोग के ॥
जननि - जनक सियराम - प्रेम के । बीज सकल ब्रत, धरम, नेम के ॥
समन पाप, संताप, सोक के । प्रिय पालक परलोक - लोक के ॥
सचिव सुभट, भूपति-बिचार के । कुंभज, लोभ-उदधि-अपार के ॥
काम, कोह, कलिमल-करिगन के । केहरि-सावक जन-मन-बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद - दवारि के ॥
मंत्र - महामनि बिषय - ब्याल के । मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह-तम दिनकर-कर-से । सेवक - सालि पाल - जलधर - से ॥
अभिमत दानि देवतरु - बर - से । सेवत सुलभ सुखद हरिहर - से ॥
सुकबि-सरद-नभ-मन उडगन-से । रामभगत जन जीवनधन - से ॥
सकल सुकृत-फल भूरि भोग-से । जगहित निरुपधि साधु लोग-से ॥
सेवक - मन - मानस मराल - से । पावन गंग - तरंगमाल - से ॥

दो०—कुपथ, कुतरक, कुचालि, कलि-कपट, दंभ, पाषंड ।
दहन राम-गुनग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥ ३२(क)॥

रामचरित, राकेस-कर-सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद, चकोर-चित हित, बिसेषि बड़ लाहु ॥ ३२(ख)॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरजु करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥

तामेव भाषया बद्धां रचयिष्येऽधुना तथा । यथा जायेत मे चित्ते प्रबोधस्तुष्टिसंयुतः ॥
मय्यस्ति यादृशं यच्च बलं बुद्धिविवेकयोः । वक्ष्ये तस्यैवानुसारं हरिणा प्रेरितो हृदि ॥
स्वशङ्काभ्रममोहानां निश्चितं विनिवारिणीम् । भवनद्याः कृते नौकां वर्णयिष्ये कथामहम् ॥
बुधविश्रामदात्री च निःशेषजनरञ्जनी । कथा रामस्य तिष्यस्य कलुषानां विभञ्जिनी ॥
कलिरूपाय सर्पाय कथा रामस्य बर्हिणी । भूयो विवेकरूपाय वह्नयेऽभिमतारणी ॥
कथा रामस्य तिष्ये तु कामधेनुर्मता ध्रुवम् । सुजनेभ्यश्च रुचिरा मता सञ्जीवनौषधिः ॥
सुधातरङ्गिणी सेयं राजते वसुधातले । भीतेर्विभञ्जिनी भ्रान्तिभेक्यर्थञ्च भुजङ्गिनी ॥
असुराणां बलस्येव नरकस्य निकन्दिनी । साधुदेवकुलस्यापि हिताय गिरिनन्दिनी ॥
सत्समाजक्षीरसिन्धोः कृते लक्ष्मीरिव स्थिता । विश्वभारोत्तोलनाय क्षमेवाचलतां गता ॥
यमदूताननमसीलेपे यमुनया समा । जीवेभ्यो मुक्तिदाने च नूनं काश्येव सत्तमा ॥
पवित्राति प्रिया चैव रामाय तुलसीसमा । हुलसीवास्ति तुलसीदासाय मनसा हिता ॥
शिवायापि प्रियास्त्येषा तुल्या मेकलकन्यया । राशिश्च सर्वसिद्धीनां तथैव सुखसम्पदाम् ॥
सद्गुणानामियं माता देवानामदितिर्यथा । भक्तेः प्रेम्णश्च रामस्य तुल्या परमसीमया ॥

मन्दाकिनी रामकथास्ति रम्या चित्तं मनोज्ञं खलु चित्रकूटः ।
वनं सुहार्दं तुलसीमतेन यत्र प्रभुः संरमते च सीता ॥ ३१ ॥

रामचन्द्रस्य चरितं चिन्तामणिरनुत्तमः । तथा सतां सुधीनार्याः शृङ्गारः परमोज्ज्वलः ॥
श्रीरामस्य गुणग्रामा जगते कुशला मताः । मुक्तेर्धनस्य धर्मस्य प्रदाः परपदस्य च ॥
ज्ञानवैराग्ययोगानां युक्ताः सद्गुरवो मताः । अश्विनौ भवरूपस्य तीव्ररोगस्य नाशने ॥
जननीजनकौ सीतारामयोः प्रेम्ण उद्गमे । सर्वेषां व्रतधर्माणां नियमानाञ्च कारणम् ॥
पापसन्तापशोकानां निश्चिताः शामका मताः । प्रियाः पालनकर्तारो लोकस्यास्य परस्य च ॥
विचारभूपतेरेते सचिवाः सुभटाः स्थिताः । लोभोदधेरपारस्य शोषणे कुम्भजा मताः ॥
कामक्रोधकलिक्रूरमलद्विपगणाय च । भक्तचित्तवनस्थाय मताः केसरिशावकाः ॥
शम्भवेऽभ्यागताः पूज्याः सदा प्रियतमास्तथा । भक्तानां कामदा मेघा दारिद्र्यदववह्नये ॥
मन्त्रा विषयसर्पाय महान्तो मणयस्तथा । लिम्पन्त्येते ललाटस्थां कुलिपिं कठिनामपि ॥
मोहान्धकारहरणे दिवाकरकरा इव । तुल्या जलधरैर्दासरूपशालिसुपालने ॥
अभीष्टकामनापूर्तौ कल्पद्रुमवरा इव । सेवने सुलभाः सौख्यप्रदा हरिहराविव ॥
सुकवेः शरदश्चित्तनभसे भगणा इव । रामभक्तजनेभ्यश्च जीवनद्रविणं यथा ॥
सर्वपुण्यफलात्मानो भूरिभोगा इव स्थिताः । हिताय जगतः साधुपुरुषा इव सम्मताः ॥
हंसा इव मता दासमानसोत्तममानसे । गङ्गातरङ्गमालेव सर्वेषामेव पावने ॥

कुमार्गकत्तर्ककुवृत्ततिष्य - पाखण्डदम्भच्छलपुञ्जदाहे ।
पुञ्जा गुणानां रघुनायकस्य दाहे प्रचण्डोऽग्निरिवेन्धनस्य ॥ ३२ ॥ क

प्रभोश्चरित्रं विधुरश्मितुल्यं सौख्यप्रदं सर्वजनेभ्य एव ।
सतां निशापद्मचकोरकाणां हृदे सुभव्यं बहुलाभदञ्च ॥ ३२ ॥ ख

चकार विविधान् प्रश्नान् विधिना येन पार्वती । विधिना येन शम्भुश्च वर्णयामास विस्तरात् ॥
प्रगाय हेतुं तं सर्वं वर्णयिष्यामि साम्प्रतम् । कथाप्रबन्धं निर्माय विचित्रं विविधं तथा ॥
इयं कथा येन पूर्वं श्रुता नैवास्ति कुत्रचित् । स श्रुत्वेमां समाश्चर्ययुक्तो न भवतु क्वचित् ॥
अलौकिकामिमां ये च शृण्वन्ति ज्ञानिनः कथाम् । आश्चर्यं नैव मन्यन्ते ते ज्ञात्वेदं स्वचेतसि ॥
यन्नास्ति सीमा रामस्य कथायाः क्वापि भूतले । विश्वासोऽयं भवत्येव तेषां चित्ते निरन्तरम् ॥

नाना भाँति राम - अवतारा । रामायन सतकोटि अपारा ॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥

दो०—राम अनंत, अनंत गुन, अमित कथा-बिस्तार ।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिन्ह कें बिमल बिचार ॥ ३३ ॥

अेहि बिधि सब संसय करि दूरी । सिर धरि गुरपद - पंकज - धूरी ॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी । करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा । बरनउँ बिसद राम - गुनगाथा ॥
संबत सोरह सै अेकतीसा । करउँ कथा हरि-पद धरि सीसा ॥
नौमी भौमबार मधुमासा । अवधपुरीं यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम-जनम, श्रुति गावहिं । तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ॥
असुर, नाग, खग, नर, मुनि, देवा । आइ करहिं रघुनायक - सेवा ॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम - कलकीरति - गाना ॥

दो०—मज्जहिं सज्जन - बृंद बहु, पावन सरजू - नीर ।
जपहिं राम, धरि ध्यान उर, सुंदर स्याम सरीर ॥ ३४ ॥

दरस, परस, मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कह बेद - पुराना ॥
नदी पुनीत अमित, महिमा अति । कहि न सकइ सारदा बिमलमति ॥
राम - धामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त बिदित, अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम, मद, दंभा ॥
रामचरितमानस अेहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
मन-करि बिषय-अनल-बन जरई । होइ सुखी जौं अेहि सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि - भावन । बिरचेउ संभु सुहावन, पावन ॥
त्रिबिध दोष, दुख, दारिद-दावन । कलि-कुचालि, कुलि कलुष-नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

दो०—जस मानस, जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु ।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा-बृषकेतु ॥ ३५ ॥

संभु-प्रसाद सुमति हियँ हुलसी । रामचरितमानस - कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति - अनुहारी । सुजन, सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥
सुमति भूमि, थल हृदय अगाधू । बेद पुरान उदधि, घन साधू ॥
बरषहिं राम - सुजस बर बारी । मधुर, मनोहर, मंगलकारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल-हानी ॥
प्रेम - भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता, सुसीतलताई ॥
सो जल सुकृत-सालि-हित होई । राम - भगतजन - जीवन सोई ॥

अवतारास्तु रामस्य प्रकारैर्बहुभिः स्थिताः । शतकोटीन्यपाराणि सन्ति रामायणान्यपि ॥
चरितानि सुरम्याणि कल्पभेदैर्हरेः पुरा । नानाप्रकारैर्गीतानि सन्त्यनेकानि विष्टपे ॥
सन्तश्चित्ते विचार्येदं मा शङ्कां कुरुत क्वचित् । शृणुतैवं रतिं मत्वा सादरं सत्कथामिमाम् ॥

रामोऽस्त्यनन्तोऽस्य गुणा अनन्ता अनन्तमेषाञ्च कथावितानम् ।
श्रुत्वा न मंस्यन्ति विचित्रतां ते येषां विचारा विमलाः सदैव ॥ ३३ ॥

इत्थं दूरीकृत्य सर्वान् बहुरूपांश्च संशयान् । मूर्ध्नि धृत्वा गुरोः पादपद्मयोर्धूलिमादरात् ॥
सर्वेभ्यो विनयं कुर्वे पुनः साञ्जलिरानतः । यथा कथाया रचने कोऽपि दोषो न संस्पृशेत् ॥
इदानीं सादरं शीर्ष्णा प्रणम्य श्रीसदाशिवम् । विशदां वर्णयामीह श्रीरामगुणसत्कथाम् ॥
एकत्रिषड्ब्रह्मसङ्ख्ये वैक्रमे शुभवत्सरे । कथां करोमि संस्थाप्य हरेः पादाब्जयोः शिरः ॥
नवम्यां भौमदिवसे मधुमासे मनोरमे । अयोध्यायामिदं रम्यं चरितं सम्प्रकाश्यते ॥
श्रुतिर्गायति यद् यस्मिन् रामजन्म सुवासरे । तस्मिंस्तत्र समायान्ति तीर्थानि सकलान्यपि ॥
असुरा नागविहगा मनुष्या मुनिदेवताः । अयोध्यां प्राप्य कुर्वन्ति रघुनाथस्य सेवनम् ॥
सम्पादयन्ति सुधियो रामजन्ममहोत्सवम् । गायन्ति ललितां कीर्तिं रघुनाथस्य सन्ततम् ॥

मज्जन्त्यनेकाश्च सतां समूहाः सुपावने नीरवरे सरय्वाः ।
जपन्ति रामस्य च नाम चित्ते ध्यात्वा तमाश्याममनोज्ञमूर्तिम् ॥ ३४ ॥

सरय्वा दर्शनं स्पर्शो मज्जनं पानमेव च । हरन्ति पापमित्याह पुराणसहिता श्रुतिः ॥
पुनीताति नदी चास्या महिमाप्यमितो मतः । शारदापि न शक्तास्ति शुद्धधीर्यस्य वर्णने ॥
शोभना पुर्ययोध्या च रामधामप्रदा सदा । प्रसिद्धा सर्वलोकेषु तथैवातीव पावनी ॥
चतुर्विधाः सन्ति जीवा असङ्ख्या जगतीतले । तेषु तेषां न संसारो येऽयोध्यायां तनुत्यजः ॥
सर्वथा सर्वविधिभिर्ज्ञात्वा रम्यां पुरीमिमाम् । सर्वसिद्धिप्रदां सर्वमङ्गलानां खनिं तथा ॥
विमलायाः कथायाश्च समारम्भः कृतो मया । नश्यन्ति यस्याः श्रवणाद् दम्भकाममदादयः ॥
इदं श्रीरामचरितमानसं नाम निर्मलम् । श्रुतिभ्यां श्रवणादेव यस्य विश्रान्तिराप्यते ॥
दन्दह्यते मनोहस्ती विषयाख्यदवानले । यद्यस्मिन्नापतेदेष तर्हि नूनं सुखी भवेत् ॥
इदं श्रीरामचरितमानसं मुनिभावनम् । श्रीशम्भू रचयामास शोभनञ्च सुपावनम् ॥
दावानलस्त्रिदोषाणां दुःखदारिद्र्यचयोस्तथा । कलेः कुवृत्तेः सर्वस्य कलुषस्य च नाशनम् ॥
विरच्य मानसे नैजे न्यधाद् गुप्तमिदं शिवः । पश्चात् प्राप्य शुभं कालमुवाच गिरिजां प्रति ॥
तस्माच्छ्रीरामचरितमानसं वरमीदृशम् । चकार नाम दृष्ट्वेदं मानसे मुदितः शिवः ॥
सुखदां शोभनाञ्चैव वच्मि तामेव सत्कथाम् ।शृण्वन्तु सुजनास्तस्मान् मनः संयोज्य सादरम् ॥

सुमानसं यादृशमस्ति जातं यथा च लोकप्रथितेश्च हेतुः ।
सर्वं प्रसङ्गं कथयामि सम्प्रत्युमामहेशौ स्मरणे निधाय ॥ ३५ ॥

शम्भोः प्रसादाद् हृदये सुमतिस्तस्य काशिता । तुलसी रामचरितमानसस्य कविस्ततः ॥
स इदं विदधात्येव सुरम्यं तु यथामति ।तथापि सुजनाः! श्रुत्वा सुचित्तेन विशोध्यताम् ॥
सुमतिर्वसुधा चित्तं तत्रागाधं स्थलं मतम् । वेदाः पुराणान्युदधिः साधवो जलदास्तथा ॥
ते वर्षन्ति वरं वारि रामस्य सुयशो ध्रुवम् । मधुरं सुमनोहारि तथा मङ्गलकारकम् ॥
यद् वर्णयन्ति सगुणां लीलां रामस्य साधवः । तदेव वारिणस्तस्य स्वच्छता मलनाशिनी ॥
अवर्णनीया रामस्य या प्रेमा भक्तिरुच्यते । सैवास्य स्वादुता नूनं तथा शीतलता शुभा ॥
तद् वारि सुकृताख्याय शालये हितकृन्मतम् । रामभक्तजनेभ्यस्तु नूनं जीवनमेव तत् ॥

मेधा-महि गत सो जल पावन । सकिलि श्रवन-मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद, सीत, रुचि, चारु, चिराना ॥

दो०—सुठि सुंदर संबाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ अेहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥ ३६ ॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ग्यान-नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति - महिमा अगुन, अबाधा । बरनब सोइ बर-बारि अगाधा ॥
रामसीय - जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि-सीप सुहाई ॥
छंद, सोरठा, सुंदर दोहा । सोइ बहुरंग कमल-कुल सोहा ॥
अरथ अनूप, सुभाव, सुभासा । सोइ पराग - मकरंद - सुबासा ॥
सुकृत - पुंज मंजुल अलि - माला । ग्यान, बिराग, बिचार मराला ॥
धुनि, अवरेब कबित-गुन-जाती । मीन मनोहर ते बहुभाँती ॥
अरथ, धरम, कामादिक चारी । कहब ग्यान - बिग्यान बिचारी ॥
नव रस, जप, तप, जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती, साधु, नाम - गुनगाना । ते बिचित्र जलबिहग समाना ॥
संतसभा चहुँ दिसि अँवराई । श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥
भगति - निरूपन बिबिध बिधाना । छमा, दया, दम, लता-बिताना ॥
सम-जम-नियम फूल, फल ग्याना । हरिपद - रति रस, बेद बखाना ॥
औरउ कथा, अनेक प्रसंगा । तेइ सुक-पिक-बहुबरन बिहंगा ॥

दो०—पुलक बाटिका - बाग - बन, सुख सुबिहंग - बिहारु ।
माली सुमन, सनेह - जल सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे । तेइ अेहि ताल चतुर रखवारे ॥
सदा सुनहिं सादर नर - नारी । तेइ सुरवर मानस - अधिकारी ॥
अति खल जे बिषई बग-कागा । ऐहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥
संबुक, भेक, सेवार - समाना । इहाँ न बिषय-कथा-रस नाना ॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे । कामी काक - बलाक बिचारे ॥
आवत अेहि सर अति कठिनाई । रामकृपा बिनु आइ न जाई ॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्ह के बचन बाघ, हरि, ब्याला ॥
गृह - कारज, नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिसाला ॥
बन बहु बिषम मोह-मद-माना । नदीं कुतर्क भयंकर नाना ॥

दो०—जे श्रद्धा-संबल-रहित, नहिं संतन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥ ३८ ॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहिं नीद जुड़ाई होई ॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा । गअेहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥
करि न जाइ सर मज्जन-पाना । फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा । सर-निंदा करि ताहि बुझावा ॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही । राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही ॥

गांधी जयन्ती के अवसर पर

"जब तक देश के करोड़ों देशवासियों को पहनने के लिए कुर्ता नहीं मिलता, तब तक मैं कुर्ता नहीं पहन सकता।"

महात्मा गांधी

उत्तर प्रदेश शासन बापू के उक्त आदर्श की क्रियान्विति के लिए क्या कर रहा है ?

- प्रदेश में अब तक २,८८,४३१ हथ करघे लगाये जा चुके हैं।
  - ३७४०० पंजीकृत लघु उद्योग स्थापित किये गये हैं।
- दशमोत्तर कक्षा के हरिजन छात्रों के लिए १९७३–७४ में २, ६४, ७४००० रु० की धनराशि स्वीकृति की गयी है। इससे ५९००० छात्रों को लाभ मिलेगा
  - दसवीं कक्षा के पूर्व के हरिजन छात्रों को १९७३–७४ वर्ष के लिए ८५ लाख रुपये का व्यय प्रस्तावित है। इससे ८८,०० छात्र लाभान्वित होंगे।
- हरिजनों के लिए सरकारी सेवाओं में १८ प्रतिशत पदों को सुरक्षित रखने के आदेशों का कड़ाई के साथ पालन।
  - कुशलता, प्राविधिक तथा अन्य शिक्षित बेरोजगारों को काम दिलाने की ८६४ करोड़ रु० की योजना।
- पूरे प्रदेश में ५ लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में ११ करोड़ रु० की योजना लागू करके ५०,००० व्यक्तियों को रोजी देने का कार्यक्रम।
  - भूमि-हीनों के लाभार्थ १८ एकड़ की अधिकतम जोत सीमा निर्धारित।

ग १३२४३ सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित विज्ञापन

स्थापित वर्ष १९४९:५०

फोन २५६३४
२२६९८

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

१२, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की १३४ सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियाँ लगभग २२ लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है।

लघु सिंचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुए कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ११—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१२—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१३—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १४—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१६—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादे सफ़र)
१७—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१८—इनके अतिरिक्त वेद, संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।
१९—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२०—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं० कां० मूल्य १०·००
२१—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत "शरीफ़ज़ाद:" ,, ४·००
२२—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ४·००
२३—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० १०·००
२४—तिरुक्कुरळ् (धर्म खण्ड)— ,, ४·००
२५—महाभारत मलयाळम्—पौलोम-आस्तीक पर्व ,, ४·००
२६—ज़ादे सफ़र (इस्लामी हदीस) ,, १०.००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—३५)
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० १२·००

वाणी प्रेस, लखनऊ-२ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक